जुलाई–सितंबर : 2022

मूल्य : 100 रुपये

नया पथ

प्रतिरोध का संकल्प

नया पथ
जुलाई–सितंबर : 2022

संस्थापक

शिव वर्मा

संपादकीय परामर्श

असग़र वजाहत

संपादक

मुरली मनोहर प्रसाद सिंह

चंचल चौहान

संपादन सहयोग

कांतिमोहन 'सोज़'

रेखा अवस्थी

जवरीमल्ल पारख

संजीव कुमार

हरियश राय

बली सिंह

बजरंग बिहारी तिवारी

आवरण

ललित नारायण 'बंटी'

इस अंक की सहयोग राशि

एक सौ रुपये

(डाक ख़र्च अलग)

संपादकीय कार्यालय

35 विदिशा एपार्टमेंट्स

79 आइ पी एक्सटेंशन, दिल्ली-92

Office

गली नं. 2, मुखिया मार्ग, खिचड़ीपुर,

दिल्ली– 110091

Email : jlsind@gmail.com

Website : www.jlsindia.org

Mobile : 9818859545, 9818577833

प्रकाशन, संपादन, प्रबंधन पूर्णतया

ग़ैरव्यावसायिक और अवैतनिक

पत्रिका में प्रकाशित विचार लेखकों के अपने हैं

जलेस की सहमति आवश्यक नहीं

जनवादी लेखक संघ केंद्र की पत्रिका

नया पथ

वर्ष 36 : अंक : 3 : जुलाई-सितंबर 2022

अनुक्रम

संपादकीय

खंड : एक
प्रतिरोध का संकल्प

जनवादी लेखक संघ का दसवां राष्ट्रीय सम्मेलन

(क) जयपुर घोषणा 7
(ख) जलेस केंद्र की रिपोर्ट 16
(ग) सम्मेलन में पारित प्रस्ताव 34
(घ) नव निर्वाचित पदाधिकारी, कार्यकारिणी, परिषद 52
(ड.) सम्मेलन की प्रेस रिपोर्ट 54

खंड : दो
प्रतिरोध : अभिव्यक्ति का वैविध्य

कविता

विष्णु नागर 58
प्रतिभा कटियार 62
नेहल शाह 70
लीमा टूटी 77
विश्वासी एक्का 80
नीलम 83
दिव्या श्री 86
शहंशाह आलम 89
सागर स्यालकोटी 92
नवनीत पांडे 94
रमेश प्रजापति 96

कहानी

लड़का और लड़की : रजनी दिसौदिया 101
बेड नंबर दस : आशा 'मुक्ता' 111

बोली - भाषा रचनाशीलता

कविता - अवधी

विवेक निराला 117
अमरेंद्र अवधिया 119
शैलेंद्र कुमार शुक्ल 121

कविता - बुंदेली

महेश कटारे सुगम 126

कविता - भोजपुरी

प्रकाश उदय 130

पुस्तक चर्चा

शिखर कथाकार का अंतर्मन : हरियश राय 136
मैं चाहता हूं तुमसे प्रेम करना : शहंशाह आलम 143
ऊपर से ज्यों स्रोत सूखते : मिथिलेश श्रीवास्तव 146
नये मगध का 'जनतंत्र' : जीवन सिंह 150
दहन होते देश की कथा : प्रेम तिवारी 155

संपादकीय

जनवादी लेखक संघ ने इस बरस अपनी सांगठनिक यात्रा के शानदार चालीस बरस पूरे कर लिये। इसका दसवां राष्ट्रीय सम्मेलन 23-25 सितंबर 2022 को जयपुर में संपन्न हुआ। सम्मेलन के दस्तावेज़ हमेशा की तरह हम *नया पथ* के इस अंक में छाप रहे हैं। जयपुर सम्मेलन ने नयी सांगठनिक टीम निर्वाचित की है। *नया पथ* के बारे में अब सारे फ़ैसले यह नयी टीम ही लेगी। हमारा विश्वास है कि संगठन और *नया पथ* दोनों स्तरों पर यह ऊर्जावान नया नेतृत्व नये *दृष्टिपत्र* और *जयपुर घोषणा* की रोशनी में समसामयिक चुनौतियों का सामना करते हुए सांगठनिक लक्ष्यों को और भी बेहतर मुक़ाम तक पहुंचायेगा।

हिंदी-उर्दू के लेखकों ने 1982 में जलेस की स्थापना के समय अपने *घोषणापत्र* में भारतीय समाज के वर्गीय यथार्थ की जिस नये नज़रिये से पहचान की थी, वह नज़रिया इन चालीस बरसों में सही साबित हुआ है। उस समय भी देश के अवाम के सामने 'जनवाद के लिए ख़तरा' था, इस ख़तरे की पहचान उस समय बहुत से 'प्रगतिशीलों' को भी नहीं थी, आज वह ख़तरा अपनी पूरी वहशी ताक़त के साथ जनवाद को निगल लेने के लिए मुंह बाये खड़ा है। यह अहसास आज उनको भी है जो उस समय बेख़बर थे। जलेस के गठन के समय इस समझ के पीछे आज़ादी के बाद के नये शोषक-शासक वर्गों के दमन, उत्पीड़न और आपात्काल के अनुभव थे, अभिव्यक्ति की आज़ादी पर बार बार लगाये जा रहे अंकुश थे, अनेक जनविरोधी क़ानून लाये जा रहे थे। उस समय भारतीय पूंजीवाद के विकास की लगाम इज़ारेदार पूंजीपतियों और बड़े भूस्वामियों के गठजोड़ के हाथ में थी, वह आज भी है, राजनीतिक दल कोई भी सत्ता में हो। इस गठजोड़ को लोकतांत्रिक व्यवस्था तभी तक रास आती है, जब तक उसका अपना हितसाधन होता है। जैसे ही सामाजिक यथार्थ उद्घाटित होने लगता है, यह गठजोड़ जनता के जनवादी अधिकार छीनने की कोशिश में लग जाता है। आज इस गठजोड़ में अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय पूंजी ने भी अपनी ताक़त झोंक दी है। सन्1991 के बाद का वैश्विक पूंजीवाद का यह नया रूप पूरी दुनिया पर अपना वर्चस्व क़ायम करने के लिए हर देश में लोकतंत्र की सबसे ख़तरनाक दुश्मन राजनीतिक ताक़तों को शह दे रहा है। यही कारण है कि दुनिया के बड़े हिस्से में धुर दक्षिणपंथी या फ़ासीवादी ताक़तें हावी हो रही हैं। इसलिए जनवाद के लिए ख़तरा पहले के मुक़ाबले कहीं अधिक बढ़ गया है। इस ख़तरे का अहसास आज हर जागरूक नागरिक को और जनतंत्र के लिए चिंता करने वाली राजनीति को हो रहा है। विश्वपूंजीवाद की रक्तपायी शोषकशक्ति ने अब विकराल रूप धारण कर लिया है। दुनिया भर में अवाम को यह निरंकुश शक्ति भ्रमित कैसे कर पा रही है, यह एक जटिल प्रश्न है। हम जनवादी लेखक संघ के अपने दस्तावेज़ों में इस सवाल से भी जूझते रहे हैं। हमें लगता रहा है कि धुर दक्षिणपंथी ताक़तें अवाम को आश्वस्त कर लेती हैं कि वे ही वैज्ञानिक और तकनीकी विकास की 'इंजन' या 'डबल इंजन' हैं, बाक़ी इस काम के लिए शायद सक्षम नहीं हैं,

उनकी रहनुमाई में यह विकास होता दिखता भी है क्योंकि उन्हें अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय पूंजी का अकूत भंडार उपलब्ध होता है। सारे देशों पर अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय क़र्ज़ का भयंकर बोझ लदा हुआ है, जिसके बारे में अवाम को कभी नहीं बताया जाता। इस वित्तीय पूंजी से अमीर और ग़रीब के बीच की खाई बहुत अधिक बढ़ चुकी है, इसके आंकड़े खुद विश्व बैंक और आइ एम एफ़ और अनेक इदारे देते हैं, जिन्हें कोई भी इंटरनेट से देख सकता है। जो ताक़तें इन देशों में जनतंत्र की रक्षा और विकास के पक्ष में संघर्षरत हैं, उनकी छवि 'विकासविरोधी' बना दी गयी है। सोवियत संघ के विघटन के बाद 'सोशलिज़्म' विकासविरोध का पर्याय समझा जा रहा है। मीडिया का यह कारनामा है। इसीलिए 'अन्याय जिधर है उधर शक्ति...'

विश्वपूंजीवाद पर 2008 के बाद इधर फिर से नये आर्थिक संकट के बादल मंडराने लगे हैं। अमीरी बढ़ती रहे और ग़रीब के श्रम से उत्पन्न अतिरिक्त मूल्य अंतर्राष्ट्रीय पूंजी के पास चला जाये, तो पूंजीवादी उत्पाद का ख़रीदार कहां से आयेगा? इसीलिए ज्यार्जी दिमित्रोव ने जर्मन फ़ासीवाद के उभार के समय कहा था, 'फ़ासीवाद वित्तीय पूंजी का सबसे घिनौना हथियार है।' उनका यह आकलन आज भी सच है। आर एस एस और उसकी राजनीतिक संरचना यानी बीजेपी उसी वित्तीय पूंजी की सबसे ख़ूंख़ार उपज है, जो हमारे, आपके और सारी जनतांत्रिक ताक़तों के वजूद के लिए ख़तरा बनी हुई है। वैश्विक पूंजीवाद के आसन्न आर्थिक संकट के दौर में यह ख़ूंख़ार ताक़त इस लोकतांत्रिक व्यवस्था के साथ कुछ भी वहशी सलूक कर सकती है, संसदीय प्रणाली का ख़ात्मा करके अपने फ़ासीवादी एजेंडे को कहीं वह इस देश को 'हिंदू राष्ट्र' घोषित करके लागू न करने लगे, जैसा कि इस तरह के आर्थिक संकट के दौर में इतिहास में होता आया है। पुराने दौर में तो इसके प्रतिरोध के लिए सुसंगठित विश्वसर्वहारा शक्ति मौजूद थी, आज सब कुछ बिखराव की चपेट में आया हुआ है। ऐसे में लेखक तो निराला की तरह यही कह सकता है, 'शक्ति की करो मौलिक कल्पना...।' यदि व्यापक संगठित जनवादी प्रतिरोध संभव न हुआ तो स्वत:स्फूर्त संघर्षों का सैलाब आ सकता है जो देश को हिंसा की चपेट में ले लेने की आशंका पैदा करता है। समय रहते जनवाद के लिए इस नये आसन्न ख़तरे की पहचान करके लोकतांत्रिक राजनीतिक ताक़तें विशाल संयुक्त मोर्चा बना सकें तो शायद वे आने वाले दिनों में जनगण को लामबंद करके देश को फ़ासीवादी क़हर से बचा सकें।

इस बीच कई जाने माने जनपक्ष में रचनारत लेखक हमारे बीच नहीं रहे। अभी पिछले ही दिनों हम सब के प्रिय कथाकार शेखर जोशी दिवंगत हो गये, फिर जानेमाने वामपंथी आलोचक मैनेजर पांडेय भी नहीं रहे। ये लेखक अपनी रचनाओं के माध्यम से तो हमेशा याद किये ही जायेंगे। हम *नया पथ* टीम की ओर से उनकी स्मृति को नमन करते हैं।

मुरली मनोहर प्रसाद सिंह
चंचल चौहान

खंड-1
प्रतिरोध का संकल्प

जनवादी लेखक संघ का दसवां राष्ट्रीय सम्मेलन

जनवादी लेखक संघ के दसवें राष्ट्रीय सम्मेलन
(23-25 सितंबर 2022)
में पारित
जयपुर घोषणा

आठ साल पहले इलाहाबाद में हुए जनवादी लेखक संघ के राष्ट्रीय सम्मेलन में विभिन्न लेखक संगठनों की सहमति से जिस इलाहाबाद घोषणा को जारी किया गया था, उसकी शुरुआत ही इस वाक्य से हुई थी कि 'भारतीय समाज इस समय फ़ासीवाद के मुहाने पर खड़ा है'। इस घोषणा के जारी होने के समय हिंदुत्वपरस्त दक्षिणपंथी ताक़तों के सत्ता हथियाने की जो आशंका व्यक्त की जा रही थी, वह तीन महीने बाद ही सच्चाई में बदल गयी थी। तब से भारत की सत्ता जिस राजनीतिक दल के हाथ में है, वह एक ऐसे संगठन (राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ) का हिस्सा है जिसका *भारतीय संविधान* के आधारभूत मूल्यों—लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता और समानता—में कभी विश्वास नहीं रहा है। हिंदुत्व की फ़ासीवादी सोच से प्रेरित इस संगठन के दिशा-निर्देशन में ही भारतीय जनता पार्टी काम करती है। पिछले आठ साल इस बात के गवाह हैं कि *संविधान* के आधारभूत मूल्यों को ध्वस्त करने के लिए जो भी मुमकिन है, उसे वह पूरी निर्लज्जता और निडरता से अंजाम दे रही है। दरअसल, अब हम फ़ासीवाद के मुहाने पर नहीं खड़े हैं बल्कि उसकी गिरफ़्त में आ चुके हैं।

तीन दशक पहले आर्थिक उदारीकरण की जिन नीतियों को देश पर थोपा गया था, उसने जनता की मुश्किलों को पहले की तुलना में कई गुना ज़्यादा बढ़ा दिया है। विडंबना यह है कि 'अच्छे दिन' का वादा करने वाली मौजूदा सरकार इन नीतियों को और तेज़ी से लागू कर रही है। सार्वजनिक संपत्तियों को निजी हाथों में बेचने, कृषि का निगमीकरण करने, मज़दूर हितकारी क़ानूनों को ख़त्म करने और शिक्षा, स्वास्थ्य तथा नागरिक सेवाओं से हाथ खींचने जैसे क़दमों ने देश को अब तक के सबसे गंभीर आर्थिक संकट में धकेल दिया है। किसान और मज़दूर ही नहीं, मध्यवर्ग का एक बड़ा हिस्सा भी सरकार की साम्राज्यवाद प्रेरित, निगमपरस्त पूंजीवादी नीतियों के कारण ग़रीबी, भुखमरी, महंगाई और बेरोज़गारी के दलदल में गहरे धंसता जा रहा है। आज बेरोज़गारी पिछले पांच दशकों में सबसे ज़्यादा है और इसकी सबसे ज़्यादा मार दलितों, आदिवासियों, महिलाओं और धार्मिक अल्पसंख्यकों पर पड़ रही है। यह विडंबना ही कही जायेगी कि शिक्षा के सार्वभौमीकरण का लक्ष्य पूरा भी नहीं हुआ है, इन आठ सालों में हज़ारों सरकारी स्कूलों को बंद कर दिया गया है। यही नहीं, इस सरकार ने जिस नयी शिक्षा नीति को लागू किया है, वह दरअसल शिक्षा के व्यावसायीकरण और सांप्रदायीकरण की मुहिम है। स्वास्थ्य सेवाओं को भी पूरी तरह निजी हाथों में सौंपा जा रहा है और योजनाबद्ध ढंग से सार्वजनिक क्षेत्र के अस्पतालों को बर्बाद किया जा रहा है। इसी का नतीजा है कि 2020-21 में कोविड-19 महामारी के कारण, स्वास्थ्य सेवा संगठन के अनुमान के अनुसार, भारत में लगभग चालीस लाख लोग

मारे गये क्योंकि उनके उपचार के संसाधन उपलब्ध कराने में सरकार पूरी तरह असफल रही।

पूंजीवादी विकास का रास्ता जनता के लिए भयावह तकलीफ़ों का रास्ता होता है और जिस पर पिछले तीन दशकों से चलने के लिए जनता को मजबूर किया जा रहा है। यह संयोग नहीं है कि मोदी सरकार ने अमरीकी साम्राज्यवाद के आगे आत्मसमर्पण कर दिया है और हमारी विदेश नीति पूरी तरह से उनकी पिछलग्गू बन चुकी है। इसी का नतीजा है कि आज किसी भी पड़ोसी देश से हमारे संबंध सामान्य नहीं हैं।

जब से मोदी सरकार सत्ता में आयी है, उन समस्त संस्थाओं को जो लोकतंत्र को बचाये रखने में कमज़ोर ढंग से ही सही भूमिका निभाती रही हैं, उसने न केवल पूरी तरह से अपने चंगुल में ले लिया है बल्कि उनका इस्तेमाल अपने राजनीतिक विरोधियों को डराने-धमकाने और उत्पीड़ित करने के लिए कर रही है। आयकर विभाग, प्रवर्त्तन निदेशालय, सीबीआई आदि का विपक्षी पार्टी के नेताओं के विरुद्ध जिस तरह इस्तेमाल हो रहा है, वैसा इतने बड़े पैमाने पर इससे पहले कभी नहीं हुआ। मुस्लिम समुदाय को छोटी-से-छोटी बात के लिए बड़ी और कड़ी सज़ा देने में तो जैसे कार्यपालिका की सभी संस्थाएं एकजुट हो गयी हैं। नारे लगाने या जुलूस निकालने पर, जो भारतीय नागरिक होने के कारण उनका लोकतांत्रिक अधिकार है, उन्हें जेलों में बंद कर दिया जाता है और उनके घरों और दुकानों पर बुलडोज़र चलाया जाता है। कार्यपालिका की इन संस्थाओं के जनविरोधी और अन्यायकारी इस्तेमाल के आगे विधायिका और न्यायपालिका भी लाचार नज़र आ रही है। ऐसा लगने लगा है कि कार्यपालिका हो या न्यायपालिका, सबकी डोर हिंदुत्वपरस्त ताक़तों के हाथ में है। अन्यथा यह कैसे होता कि गुजरात दंगे में मारे गये लोगों के पक्ष में न्याय की लड़ाई लड़ने वालों को ही उल्टे अपराधी बता कर गिरफ़्तार कर लिया जाता है और जल, जंगल और ज़मीन को लेकर आदिवासियों की लड़ाई लड़ने वालों को डराने-धमकाने का काम खुद उच्चतम न्यायालय की पीठ से किया जाता है। बिलक़ीस बानो के साथ सामूहिक बलात्कार करने वालों, उसकी तीन साल की बच्ची को पत्थर पर पटककर मार देने वालों और उसके परिवार के सदस्यों की हत्या करने वालों का अपराध किसी भी अर्थ में निर्भया के साथ किये गये अपराध से कम बर्बर नहीं था, लेकिन इन अपराधियों को केवल आजीवन कारावास की सज़ा मिलती है और इस सज़ा के 14 साल बाद ठीक 15 अगस्त के दिन इन बर्बर अपराधियों को ससम्मान रिहा कर दिया जाता है। ऐसा लगता है कि भारत के न्यायालयों ने न्याय से ही मुंह मोड़ लिया है। इसी का नतीजा है कि पिछले तीन साल से धारा 370, इलेक्टोरल बांड, नागरिकता संशोधन क़ानून आदि पर विचार करने का समय भी सर्वोच्च न्यायालय के पास नहीं है। भीमा कोरेगांव सहित बहुत से झूठे और आधारहीन मामलों में गिरफ़्तार मानवाधिकार कार्यकर्ताओं, बुद्धिजीवियों, सामाजिक कार्यकर्ताओं, पत्रकारों, लेखकों, कलाकारों को जमानत के अभाव में कई-कई सालों और महीनों तक जेलों में बंद रहना पड़ रहा है और उनकी कहीं कोई सुनवाई नहीं है।

जब राजसत्ता निरंकुश और आततायी होने लगती है तो मीडिया जनता की आवाज़ बनकर सामने आता है। लेकिन आज सरकारी और निगम मीडिया पूरी तरह से राजसत्ता का भोंपू बना हुआ है। जिस निर्लज्जता से वह सरकार के हर जनविरोधी क़दम का न केवल समर्थन करता है बल्कि सरकार की नीतियों का विरोध करने वालों पर हमला भी करता है, इसी चरित्र की वजह से उसे 'गोदी मीडिया' नाम बिल्कुल सही दिया गया है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर इन आठ सालों में जिस तरह का हमला

हुआ है, वैसा हमला तो आपातकाल के दौरान भी नहीं हुआ था। आज स्थिति यह है कि सोशल मीडिया पर सरकार-विरोधी या हिंदुत्व-विरोधी छोटी और मामूली टिप्पणी, व्यंग्य या कार्टून जैसी रचना भी किसी को जेल की दीवारों के पीछे पहुंचा सकती है जबकि मुसलमानों के नरसंहार का आह्वान करने वालों का बाल भी बांका नहीं होता। ऐसे कई तथाकथित साधु-संत मुसलमानों के विरुद्ध ज़हर उगलते हुए, सावरकर और नाथूराम गोडसे की जयजयकार करते हुए और भारत के *संविधान* की धज्जियां उड़ाते हुए बेख़ौफ़ घूम रहे हैं।

इन आठ सालों में ब्राह्मणवादी, मनुवादी, दलितविरोधी, पितृसत्तावादी, बहुसंख्यकवादी, मुस्लिम -विरोधी, हिंदुत्वपरस्त ताक़तों को अच्छी तरह से एहसास हो चुका है कि यह राजसत्ता उनकी है और वे कुछ भी कर सकते हैं। यह अकारण नहीं है कि इन आठ सालों में लगातार मुसलमानों पर ही नहीं, महिलाओं, दलितों, आदिवासियों और अन्य कमज़ोर वर्गों पर हमले बढ़े हैं। दलितों को घोड़ी पर बैठकर बारात निकालने, मूंछें रखने और सवर्णों के घड़े को छूने भर से जान से मारा जा सकता है। उन्हें तरह-तरह से अपमानित किया जाता है। शिक्षा संस्थाओं और नौकरियों में आरक्षण लगातार कम किया जा रहा है और सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों के बेचने की मुहिम का नतीजा है कि इन सभी कमज़ोर वर्गों के रोज़गार के रास्ते लगातार बंद होते जा रहे हैं।

यह दौर आज़ादी के बाद का सबसे संकटपूर्ण और चुनौती भरा दौर है। धर्म के नाम पर जिस तरह एक पूरे वर्ग को देश के दुश्मन की तरह पेश किया जा रहा है और उन्हें *संविधान* में मिले नागरिक अधिकारों से वंचित कर दोयम दर्जे के नागरिक में तब्दील किया जा रहा है, वह इस राजसत्ता के फ़ासीवादी चरित्र का ही प्रमाण है। आज लोकतांत्रिक और धर्मनिरपेक्ष भारत व्यावहारिक अर्थों में 'हिंदू राष्ट्र' बन चुका है, जो न केवल धार्मिक अल्पसंख्यकों के विरुद्ध है, बल्कि दलितों, आदिवासियों और स्त्रियों के समान अधिकारों का विरोधी भी है। भारत का यह फ़ासीवाद अपने चरित्र में अतिदक्षिणपंथी भी है और ब्राह्मणवादी भी। मौजूदा राजसत्ता के विरुद्ध संघर्ष उन सब भारतीयों का कर्त्तव्य है जो भारतीय *संविधान* में यक़ीन करते हैं और जो भारत की बहुविध धार्मिक, जातीय, भाषायी और सांस्कृतिक परंपरा को बचाये रखना चाहते हैं क्योंकि असली भारत इसी परंपरा में निहित है जिसे हिंदुत्वपरस्त ताक़तें ख़त्म करना चाहती हैं।

इस संघर्ष से हम लेखक, कलाकार, फ़िल्मकार, बुद्धिजीवी और संस्कृतिकर्मी अलग नहीं रह सकते। एक ज़िम्मेदार नागरिक के नाते भी और लेखक-कलाकार होने के नाते भी हमारे लिए ज़रूरी है कि हम *संविधान* प्रदत्त अभिव्यक्ति के अधिकारों और साथ ही अन्य नागरिक अधिकारों के लिए संघर्ष करें और इस सत्ता के जनविरोधी तथा मानवविरोधी चरित्र को अपनी पूरी आलोचनात्मक क्षमता के साथ अपने लेखन और अपनी कला द्वारा उजागर करें, चाहे इसके लिए हमें कितनी ही भारी क़ीमत क्यों न चुकानी पड़े! पिछले आठ सालों में लेखकों और कलाकारों ने मौजूदा सत्ता की जनविरोधी, रचनाविरोधी और कलाविरोधी मुहिम के विरुद्ध लगातार प्रतिरोध आंदोलन चलाया है। असहिष्णुता का जो महौल बना है, उसका विरोध करते हुए 40 से अधिक लेखकों ने साहित्य अकादमी पुरस्कार लौटाये हैं। कई अन्य लेखकों, कलाकारों और बुद्धिजीवियों ने अन्य पुरस्कार भी वापस किये हैं। लेकिन प्रतिरोध की इस लड़ाई को और अधिक व्यापक और गहन बनाने की ज़रूरत है। हमें इस बात

को समझना होगा कि इस लड़ाई को न तो अकेले लड़ा जा सकता है और न ही छोटे-बड़े संगठनों और समूहों के माध्यम से। लेखकों, कलाकारों और बुद्धिजीवियों के सभी संगठनों और समूहों को, जो लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता और समानता के मानव-मूल्यों में यक़ीन करते हैं, अपने मतभेदों को भूलकर एकजुट होना होगा। उन्हें मिलकर एक ऐसा साझा मंच बनाना होगा जहां न केवल लेखक बल्कि कलाकार, फ़िल्मकार, शिक्षक और बुद्धिजीवी सभी अपनी आवाज़ बुलंद कर सकें। हमें इस बात को भी समझना होगा कि यह एक ऐसी लड़ाई है जिसके लिए हमें अपने दायरों से बाहर निकलकर जनता की चौतरफ़ा लड़ाई में भी शामिल होना होगा क्योंकि हमारी ताक़त तो हमारी जनता ही है और राजसत्ता के दमन से हमारा बचाव भी जनता ही कर सकती है।

यह वह दौर है जब निगम और सरकारी, सभी तरह के मीडिया संस्थान पूरी तरह से शासक वर्ग के नियंत्रण में हैं। उनसे किसी भी तरह की अपेक्षा करना अपने को भुलावे में रखना है। हमें उन वैकल्पिक माध्यमों को सहयोग देना भी होगा और उनसे सहयोग लेना भी होगा जो इस विकट स्थिति में भी जोखिम उठाकर अपने जनपक्षीय कर्त्तव्यों पर अडिग हैं। हमें छोटे-बड़े माध्यम बनाने भी होंगे। हमें एक ऐसा नेटवर्क स्थापित करना होगा जिसके माध्यम से प्रतिरोध की हर आवाज़ और हर संघर्ष को साझा मंच मिल सके। हमें रचनात्मक अभिव्यक्ति के नये तरीक़े ढूंढ़ने होंगे। अब अभिव्यक्ति के ख़तरे उठाने ही होंगे, नहीं तो अभी जो थोड़ी बहुत आज़ादी दिखायी दे रही है, वह भी जल्दी ही हमसे छीन ली जायेगी।

जयपुर ऐलानिया उर्दू में पढ़ने के लिए पेज 15 से शुरू करें

مخالف اور انسان مخالف کردار کو، اپنی تمام ناقدانہ صلاحیتیں بروئے کار لاتے ہوئے اپنی تحریروں اور فن کے وسیلے سے اجاگر کریں۔ اس کے لیے ہمیں خواہ کتنی ہی بھاری قیمت کیوں نہ چکانی پڑے۔ پچھلے آٹھ برسوں میں ادیبوں اور فنکاروں نے موجودہ اقتدار یہ کی عوام مخالف، تخلیق مخالف اور فن مخالف مہم کے خلاف لگاتار مزاحمتی تحریک چلائی ہے۔ عدم رواداری کا جو ماحول بنا ہوا ہے، اس کی مخالفت کرتے ہوئے 40 سے زیادہ ادیبوں نے ساہتیہ اکادمی انعام لوٹائے ہیں۔ کئی دوسرے ادیبوں، فنکاروں اور دانشوروں نے دیگر انعامات بھی واپس کیے ہیں۔ لیکن مزاحمت کی اس لڑائی کو اور زیادہ وسعت دینے اور تیز تر کرنے کی ضرورت ہے۔ ہمیں اس بات کو سمجھنا ہوگا کہ اس لڑائی کو نہ تو اکیلے لڑا جا سکتا ہے اور نہ ہی چھوٹی بڑی تنظیموں اور گروہوں کے ذریعے سے۔ ادیبوں، فنکاروں اور دانشوروں کی سبھی تنظیموں اور گروہوں کو، جو جمہوریت، سیکولرزم اور مساوات کی اقدار میں یقین رکھتے ہیں، اپنے اختلافات بھول کر متحد ہونا ہوگا۔ انہیں مل کر ایک ایسا ساجھا منچ بنانا ہوگا، جہاں سے نہ صرف ادیب بلکہ فنکار، فلمکار، اساتذہ اور دانشور سبھی اپنی آواز بلند کر سکیں۔ ہمیں اس بات کو بھی سمجھنا ہوگا کہ یہ ایک ایسی لڑائی ہے جس کے لیے ہمیں اپنے دائروں سے باہر نکل کر جنتا کی چوطرفہ لڑائی میں بھی شامل ہونا ہوگا کیونکہ ہماری طاقت تو ہماری جنتا ہی ہے اور اقتدار یہ کے مظالم سے ہمارا بچاؤ بھی جنتا ہی کر سکتی ہے۔

یہ وہ دور ہے جب نگم اور سرکاری سبھی طرح کے میڈیا ادارے پوری طرح سے حکمراں طبقے کے کنٹرول میں ہیں۔ ان سے کسی بھی طرح کی توقع کرنا خود کو بھلاوے میں رکھنے کے مترادف ہے۔ ہمیں ان متبادل ذرائع کو اپنا تعاون دینا بھی ہوگا اور لینا بھی ہوگا جو اس سنگین صورتِ حال میں بھی جوکھم اٹھا کر عوام کے تئیں اپنے فرائض کی انجام دہی پر ثابت قدم ہیں۔ ہمیں چھوٹے بڑے مزید ذرائع بنانے ہوں گے۔ ہمیں ایک ایسا نیٹ ورک قائم کرنا ہوگا جس کے وسیلے سے مزاحمت کی ہر آواز اور ہر سنگھرش کو ساجھا منچ مل سکے۔ ہمیں تخلیقی اظہار کے نئے طریقے تلاش کرنے ہوں گے۔ اب اظہارِ رائے کے لیے خطرے اٹھانے ہی ہوں گے، نہیں تو ابھی جو تھوڑی بہت آزادی دکھائی دے رہی ہے وہ بھی جلدی ہی ہم سے چھین لی جائے گی۔

گوڈسے کی جے جے کار کرتے ہوئے اور بھارت کے آئین کی دھجیاں اڑاتے ہوئے بے خوف گھوم رہے ہیں۔

ان آٹھ برسوں میں برہمنوادی، منووادی، دلت مخالف، مرد شاہی، اکثریت نواز، مسلم مخالف، ہندتواپرست طاقتوں کو اچھی طرح سے احساس ہو چکا ہے کہ یہ اقتدار یہ ان کی ہے اور وہ کچھ بھی کر سکتے ہیں۔ یہ بلا سبب نہیں ہے کہ ان آٹھ برسوں میں لگاتار مسلمانوں پر ہی نہیں، بلکہ عورتوں، دلتوں، آدیواسیوں اور دیگر کمزور طبقوں پر حملوں میں اضافہ ہوا ہے۔ دلتوں کو گھوڑی پر بیٹھ کر بارات نکالنے، مونچھیں رکھنے اور اعلیٰ ذات کے ہندوؤں کے گھڑے چھونے جیسے معمولی کاموں پر جان سے مارا جا سکتا ہے۔ انہیں طرح طرح سے بے عزت کیا جاتا ہے۔ تعلیمی اداروں اور نوکریوں میں ریزرویشن لگاتار کم کیا جا رہا ہے اور قومی صنعتی اداروں کو فروخت کرنے کی مہم کا ہی یہ نتیجہ ہے کہ ان سبھی کمزور طبقات کے روزگار کے راستے لگاتار بند ہوتے جا رہے ہیں۔

یہ دور آزادی کے بعد کا سب سے مشکل اور چنوتی بھرا دور ہے۔ مذہب کے نام پر جس طرح ایک پورے طبقے کو ملک کے دشمن کی طرح پیش کیا جا رہا ہے اور آئین میں ملے شہری حقوق سے محروم کر کے انہیں دویم درجے کے شہریوں میں تبدیل کیا جا رہا ہے، وہ اس اقتدار یہ کے فاشسٹ کردار کا ہی ثبوت ہے۔ آج جمہوری اور سیکولر ہندوستان عملی سطح پر 'ہندو راشٹر' بن چکا ہے، جو نہ صرف مذہبی اقلیتوں کے خلاف ہے، بلکہ دلتوں، آدیواسیوں اور عورتوں کے مساوی حقوق کا مخالف بھی ہے۔ ہندوستان کا یہ فاشزم اپنے باطن میں انتہا درجے کا رجعت پرست بھی ہے اور براہمنوادی بھی۔ موجودہ اقتدار یہ کے خلاف سنگھرش ان سب ہندوستانیوں کا فرض ہے جو بھارتیہ آئین میں یقین کرتے ہیں اور جو بھارت کی مذہبی، علاقائی، بھاشائی اور تہذیبی و ثقافتی روایات میں تکثیریت کو بچائے رکھنا چاہتے ہیں کیونکہ اصلی بھارت تکثیریت کی اسی پرمپرا میں مضمر ہے جسے ہندوتواپرست طاقتیں ختم کرنا چاہتی ہیں۔

اس جدوجہد سے ہم ادیب، فنکار، فلمکار، دانشور اور ثقافت کار الگ نہیں رہ سکتے۔ ایک ذمہ دار شہری ہونے کے ناطے بھ، نیز ادیب و فنکار ہونے کے ناطے بھی ہمارے لیے ضروری ہے کہ ہم آئین کے دیے ہوئے آزادیِ اظہار کے حق اور دیگر شہری حقوق کے لیے جدوجہد کریں اور اس حکومت کے عوام

میں بند کر دیا جاتا ہے اور ان کے گھروں اور دکانوں پر بلڈوزر چلایا جاتا ہے۔ انتظامی اداروں کے عوام مخالف اور غیر منصفانہ استعمال کے آگے قانون سازیہ اور عدلیہ بھی لاچار نظر آرہی ہیں۔ ایسا لگنے لگا ہے کہ انتظامیہ ہو یا عدلیہ، سب کی ڈور ہندتواپرست طاقتوں کے ہاتھ میں آچکی ہے۔ ورنہ یہ کیسے ہوتا کہ گجرات فسادات میں مارے گئے لوگوں کی حمایت میں انصاف کی لڑائی لڑنے والوں کو ہی الٹے مجرم بتا کر گرفتار کر لیا جاتا ہے اور جل، جنگل اور زمین کو لے کر آدیواسیوں کی لڑائی لڑنے والوں کو ڈرانے دھمکانے کا کام خود عدالتِ عالیہ کے ذریعے کیا جاتا ہے؟ بلقیس بانو کی اجتماعی عصمت دری کرنے والوں، اس کی تین سال کی بچی کو پتھر پر پٹخ کر مارنے والوں اور اس کے دیگر اہلِ خانہ کو قتل کرنے والوں کے جرائم کسی بھی طرح نربھیا کے خلاف کیے گئے جرم سے کم خوفناک نہیں تھے لیکن ان مجرموں کو صرف عمر قید کی سزا ملتی ہے اور اس سزا کے 14 سال بعد ٹھیک 15 اگست کے دن ان سفاک مجرموں باعزت بری کر دیا جاتا ہے۔ ایسا لگتا ہے کہ ہندوستان کی عدالتوں نے انصاف سے ہی منھ موڑ لیا ہے۔ اسی کا نتیجہ ہے کہ پچھلے تین سال سے دھارا 370، الیکٹورل بانڈ، شہریت ترمیم قانون وغیرہ پر غور و فکر کرنے کا وقت بھی عدالتِ عالیہ کے پاس نہیں ہے۔ بھیما کورے گاؤں سمیت بہت سے جھوٹے اور بے بنیاد معاملوں میں گرفتار حقوقِ انسانی کے کارکنوں، دانشوروں، سماجی کارکنوں، صحافیوں، ادیبوں، فنکاروں کو ضمانت نہ ملنے کے سبب کئی کئی سال اور مہینوں تک جیلوں میں بند رہنا پڑ رہا ہے اور ان کی کہیں کوئی شنوائی نہیں ہوتی۔

جب اقتدار یہ بے لگام اور ظالم ہونے لگتی ہے تو میڈیا جنتا کی آواز بن کر سامنے آتا ہے۔ لیکن آج سرکاری اور نگم میڈیا پوری طرح سے اقتدار یہ کا بھونپو بنا ہوا ہے۔ جس بے شرمی سے وہ سرکار کے عوام مخالف ہر اقدام کی نہ صرف حمایت کرتا ہے بلکہ سرکار کی پالیسیوں کی مخالفت کرنے والوں پر حملہ بھی کرتا ہے۔ اسی کردار کی وجہ سے اسے درست ہی 'گودی میڈیا' نام دیا گیا ہے۔ اظہارِ رائے کی آزادی پر ان آٹھ سالوں میں جس طرح کا حملہ ہوا ہے، ویسا حملہ تو ایمرجنسی کے دوران بھی نہیں ہوا تھا۔ آج صورتِ حال یہ ہے کہ سوشل میڈیا پر سرکار مخالف یا ہندوتوا مخالف کوئی چھوٹا اور معمولی تبصرہ، طنز یا کارٹون جیسی چیزیں بھی کسی کو جیل کی دیواروں کے پیچھے پہنچا سکتی ہیں، جبکہ مسلمانوں کے قتلِ عام کی دعوت دینے والوں کا بال بھی بیکا نہیں ہوتا۔ ایسے کئی نام نہاد سادھو سنت مسلمانوں کے خلاف زہر اگلتے ہوئے، ساور کر اور ناتھورام

اقدامات نے دیش کو اب تک کے سب سے سنگین اقتصادی بحران میں دھکیل دیا ہے۔ کسان اور مزدور ہی نہیں، متوسط طبقے کا ایک بڑا حصہ بھی سرکار کی سامراجیت سے متاثر، نگم پرست پونجی وادی پالیسیوں کی وجہ سے غریبی، بھکمری، مہنگائی اور بے روزگاری کی دلدل میں دھنستا جا رہا ہے۔ آج بے روزگاری گزشتہ پانچ دہائیوں میں سب سے زیادہ بڑھی ہوئی ہے اور اس کی بیشتر مار دلتوں، آدیواسیوں، عورتوں اور مذہبی اقلیتوں پر پڑ رہی ہے۔ یہ ستم ظریفی ہی کہی جائے گی کہ تعلیم کو عام کرنے کا ہدف پورا بھی نہیں ہوا ہے کہ ان آٹھ سالوں میں ہزاروں سرکاری اسکولوں کو بند کر دیا گیا ہے۔ یہی نہیں، اس سرکار نے جس نئی تعلیمی پالیسی کو نافذ کیا ہے، وہ دراصل تعلیم کو تجارت میں بدلنے اور فرقہ پرستی کو عام کرنے کی مہم ہے۔ صحت عامہ خدمات کو بھی پوری طرح نجی ہاتھوں میں سونپا جا رہا ہے اور باقاعدہ منصوبے بنا کر عوامی شعبے کے اسپتالوں کو برباد کیا جا رہا ہے۔ اسی کا نتیجہ ہے کہ 2020-21 میں کووڈ 19- وبا کے سبب ورلڈ ہیلتھ آرگنائزیشن کے اندازے کے مطابق ہندوستان میں لگ بھگ چالیس لاکھ لوگ مارے گئے کیونکہ انھیں علاج کی سہولیں مہیا کرانے میں سرکار پوری طرح ناکام رہی۔

سرمایہ دارانہ ترقی کا راستہ عوام کے لیے خوفناک تکلیفوں کا راستہ ہوتا ہے، اور اسی پر چلنے کے لیے جنتا کو پچھلی تین دہائیوں سے مجبور کیا جا رہا ہے۔ یہ محض اتفاق نہیں ہے کہ مودی سرکار نے امریکی سامراجیت کے آگے ہتھیار ڈال دیے ہیں اور ہماری خارجہ پالیسی پوری طرح سے ان کی دم چھلّا بن چکی ہے۔ اسی کا نتیجہ ہے کہ آج کسی بھی پڑوسی ملک سے ہمارے تعلقات معمول پر نہیں ہیں۔

جب سے مودی سرکار اقتدار میں آئی ہے، ان تمام اداروں کو، جو جمہوریت کو بچائے رکھنے میں کمزور سا ہی سہی ایک رول ادا کرتے رہے ہیں، اس نے نہ صرف پوری طرح سے اپنے چنگل میں لے لیا ہے، بلکہ ان کا استعمال اپنے سیاسی مخالفین کو ڈرانے دھمکانے اور ستانے کرنے کے لیے کیا جا رہا ہے۔ انکم ٹیکس محکمہ، پریورتن ندیشالیہ، سی بی آئی وغیرہ کا استعمال حذبِ مخالف کے نیتاؤں کو ستانے اور خاموش کرنے کے لیے جس طرح ہو رہا ہے، ویسا اتنے بڑے پیمانے پر اس سے پہلے کبھی نہیں ہوا۔ مسلمانوں کو تو چھوٹی سے چھوٹی بات پر بڑی اور کڑی سزا دینے کے لیے جیسے سرکاری انتظامیہ کے سبھی ادارے متحد ہو گئے ہیں۔ نعرے لگانے یا جلوس نکالنے پر، جو ہندوستانی شہری ہونے کی وجہ سے ان کا جمہوری حق ہے، انہیں جیلوں

انجمن جمہوریت پسند مصنفین کی دسویں قومی کانفرنس

جے پور اعلانیہ

23-25 ستمبر 2022

آٹھ سال پہلے الٰہ آباد میں ہوئی انجمن جمہوریت پسند مصنفین کی قومی کانفرنس میں مختلف ادبی تنظیموں کی منظوری سے جس الٰہ آباد اعلانیہ کو جاری کیا گیا تھا، اس کی شروعات ہی اس جملے سے ہوئی تھی کہ 'ہندوستانی سماج اس وقت فاشزم کے دہانے پر کھڑا ہے۔' اس اعلانیے کے اجرا کے وقت ہندتوا پرست دائیں بازو کی جن طاقتوں کے اقتدار پر قابض ہونے کے خدشے ظاہر کیے جا رہے تھے وہ خدشے تین مہینے بعد ہی سچائی میں بدل گئے تھے۔ تب سے ملک کے اقتدار پر ایک ایسی پارٹی حکومت کر رہی ہے جو ایک ایسی تنظیم (راشٹریہ سویم سیوک سنگھ) کا حصہ ہے جس کا ہندوستانی آئین کی اساسی اقدار، جمہوریت، سیکولرازم اور مساوات میں کبھی عقیدہ نہیں رہا ہے۔ ہندتوا کی فاشسٹ سوچ سے تحریک پاکر اس تنظیم کی رہنمائی میں ہی بھارتیہ جنتا پارٹی کام کرتی ہے۔ پچھلے آٹھ سال اس بات کے شاہد ہیں کہ آئین کی اساسی اقدار کو منہدم کرنے لیے جو کچھ ممکن ہے، وہ اس پر پوری بے شرمی اور بے خوفی سے عمل کر رہی ہے۔ دراصل، اب ہم فاشزم کے دہانے پر نہیں کھڑے ہیں بلکہ اس کی گرفت میں آ چکے ہیں۔

تین دہائیوں پہلے اقتصادی نرم روی کی جن پالیسیوں کو ملک پر تھوپا گیا تھا، اس نے جنتا کی مشکلوں کو پہلے کے مقابلے میں کئی گنا بڑھا دیا ہے۔ ستم ظریفی یہ ہے کہ 'اچھے دن' کا وعدہ کرنے والی موجودہ سرکار ان پالیسیوں پر تیزی سے عمل پیرا ہے۔ قومی اثاثوں کو نجی ہاتھوں میں بیچنے، کاشتکاری کو کارپوریٹ میں بدلنے، مزدور کی فلاح کے قانونوں کو ختم کرنے اور تعلیم، صحتِ عامہ اور شہری خدمات سے ہاتھ کھینچنے جیسے

जनवादी लेखक संघ का दसवां राष्ट्रीय सम्मेलन, जयपुर
दिनांक 23-24-25 सितंबर 2022
केंद्र की रिपोर्ट

असुरक्षित लोग ही घरों के बाहर डेरा डालते हैं
बाढ़ तूफ़ान भूचाल जैसी
मुसीबत में लोग घरों से निकल पड़ते हैं
युद्ध के समय बड़ी-बड़ी आबादियां
निकल पड़ती हैं

अब तो अपना ही निज़ाम युद्ध छेड़ रहा है अवाम के ख़िलाफ़

पिछली सर्दियों में लोग शाहीन बाग़ मे बैठे थे कितने ही शहरों में

उससे पिछले सालों मे पढ़ने वाले लड़के लड़कियां सर्दियों में रातों को सड़कों पर थे और पानी की तोपें थीं
बनारस दिल्ली हैदराबाद लखनऊ...

सच कहें पिछले कितने सालों से लोग बार-बार सुरक्षित कोने छोड़ रहे हैं वहां एक मुसीबत है
वो कौन सा साल था जब मुज़फ़्फ़रनगर के बच्चे राहत शिविर में ठंड से मर रहे थे
और गुजरात में...नरोदा पाटिया और कहां-कहां

कितने बरस हुए हिंदुस्तान को उजड़े
लोग कब से नहीं सोये
घर छोड़ कहां कहां
प्लास्टिक की शीट के नीचे सिमट रहे हैं
कितने साल हुए किसका हाल पूछते हो इस बेहाली में
एक वो भी साल था
सर्दी की रात में दिल्ली में झुग्गियां रौंदी गयीं
छह महीने की बच्ची वहीं पूरी हो गयी थी

ज़रूरी है रात को उन सबको याद किया जाये जो उजड़े हैं

जो मारे गये
जो जेल में हैं
जो गुम कर दिये गये
जिन्हें कहीं भी अचानक गोली मार दी गयी

इसी साल वसंत बीतते-बीतते मज़दूर सड़क पर थे
उनसे प्लास्टिक की छाया भी छिन गयी थी
रेलवे ट्रैक पर रोटियां बिखरी थीं उन्हे खाने वाले चले गये

हम कब से युद्ध के बीच हैं
निज़ाम ही अवाम को घेर कर निशाने पर ले रहा है
नेशनल हाई वे पर कल मज़दूर थे
आज किसान हैं
मैं देख रही हूं कैसी सादगी है लोगों में और कैसा स्वाभिमान
कैसे वे जीवन को बचाते हैं
हिंसा और नफ़रत के बीच
प्यार की मिसाल क़ायम करते हैं

अपने एकांत में अवाम को
निहारना ज़रूर एक अच्छा काम है
--शुभा की कविता, 'रात का संवाद'/2020

एक हिंदुस्तान था
जो हृदय से चीत्कार की तरह उठ कर...
आंखों में गर्म चुभती हवा की मानिंद
लहरा रहा था

उस वक़्त मैं अपनी ही विस्मृत गली में फटे काग़ज़ की मानिंद
पुरानी जर्जर चौखटों से लिपटता
फड़फड़ा रहा था

इन सबके बीच उम्मीद का एक अदृश्य ख़ून-आलूद आंचल
जिस्म पर आख़िरी लिबास की तरह चिपक रहा था
और एक दरवेश अपना फूटा कश्कोल लिये
अपना अंतिम गीत गाता फिर रहा था...

हिंदू-मुस्लिम भाईचारा अब एक गर्म ख़ंजर का
पुराना पड़ चुका खोल भर था
जो किसी दम हमारा ही सीना चाक कर सकता था
लेकिन कमर से लटकाये हम अब भी उस पर यक़ीन करने
की ज़िद्द पर अड़े हुए थे

अब हिंदुस्तान एक अनोखा मदफ़न बन चुका था
जिसमें हर रात मैं और मेरे जैसे तमाम लोग
अपनी ही छोटी-छोटी क़ब्रें खोद रहे थे...

--अदनान कफ़ील दरवेश की कविता, 'मदफ़न'/2022

हमारे समय की ये कविताएं इस दौर का दस्तावेज़ हैं। अगर देश के दिन फिर गये तो विचारशील जन इन्हें, और ऐसी और कविताओं को पढ़कर याद करेंगे कि उन्होंने कितना बुरा वक़्त देखा था! और अगर यही दुर्गति जारी रही तो इन्हें पढ़कर... नहीं, तब शायद उनके कागज़-पत्तर या कंप्यूटर में इनका पाया जाना ख़तरनाक होगा, वह यूएपीए जैसे किसी क़ानून को न्योता देना होगा, और हिंदुत्ववादी आतंक के साये में ये धीरे-धीरे अपने लगभग सभी ठिकानों से मिटा दी जायेंगी।

27-28 जनवरी 2018 को धनबाद में संपन्न जलेस के नौवें राष्ट्रीय सम्मेलन में पारित केंद्र की रिपोर्ट ने 2014 के बाद की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का जो आकलन पेश किया था, वह आज के समय के लिए भी सही है। अगर कोई बदलाव आया है तो हालात की बदतरी के अर्थ में ही।

एक लेखक संगठन के रूप में लेखन और संस्कृति-कर्म से जुड़े मुद्दे हमारे केंद्रीय मुद्दे हैं, लेकिन इन्हें मौजूदा यथार्थ की समग्रता से अलग करके नहीं देखा जा सकता—यह बात पिछले सम्मेलन की रिपोर्ट में बहुत उभरकर आयी थी। हमने यह स्वीकार किया था कि 'कलात्मक और वैचारिक अभिव्यक्तियों का दमन, निस्संदेह, समाज में जारी उस दमन का ही विस्तार है जिसके ख़िलाफ़ ये अभिव्यक्तियां हमें जाग्रत करती हैं और जिन्हें जारी रखने के लिए अभिव्यक्तियों को कुचलना अनिवार्य हो जाता है। 'हिंदू राष्ट्र' की संकल्पना को साकार करने के लिए मुसलमानों को दोयम दर्जे के नागरिकों में तब्दील करना, हिंदू समाज की विविधता को ख़त्म कर हिंदुत्व का एकाश्म गढ़ना, दलितों और स्त्रियों को मातहत की भूमिका में रखना और *मनुस्मृति* के आदर्श के अनुरूप वर्णाश्रम का श्रेणीक्रम लागू करना प्राथमिक महत्व के कार्यभार हैं। जो विचार और कला इस कार्यभार के ज़मीनी अमल की आलोचना करे, उसे चुप कराना इसका संबद्ध कार्यभार है। इस तरह कलाकारों और विचारकों पर हो रहे हमलों को इस देश के अल्पसंख्यकों, दलितों और स्त्रियों पर हो रहे हमलों से अलग करके नहीं समझा जा सकता।'

यही नज़रिया उस रिपोर्ट में हिंदुत्व के अभियान की सहयोगी नव-उदारवादी नीतियों के संदर्भ

में भी व्यक्त किया गया था :

> अगर सांप्रदायिक फ़ासीवादी विचारधारा को दिशाहारा बेरोज़गारों की अपनी विराट पैदल सेना के लिए नव-उदारवादी अर्थतंत्र की ज़रूरत है तो नव-उदारवादी अर्थतंत्र को भी दो महत्वपूर्ण कारणों से सांप्रदायिक विचारधारा की मदद दरकार है—एक, आज़ादी की लड़ाई से विरासत में मिले साम्राज्यवाद-विरोधी राष्ट्रवाद को पूंजी के हितैषी बूर्जुआ राष्ट्रवाद में रूपांतरित करने के लिए, और दो, अपनी कारस्तानियों से उपजे जन-असंतोष को अपने ख़िलाफ़ लक्षित होने से रोकने के लिए।

कुल मिलाकर, उस विश्लेषण का लब्बोलुआब यह था कि हमारे समय की सत्तासीन सांप्रदायिक फ़ासीवाद ताक़तें नव-उदारवाद और हिंदुत्व के ज़हरीले गठजोड़ का प्रतिनिधित्व करती हैं जिन्होंने हिंदू राष्ट्र का निर्माण करने और बड़ी पूंजी को अधिकतम लाभ पहुंचाने का लक्ष्य हासिल करने के लिए सामाजिक स्तर पर साझा संस्कृति और राजनीतिक स्तर पर लोक-कल्याणकारी राज्य के बचे-खुचे अवशेषों को ध्वस्त करने का बीड़ा उठाया है।

आज, लगभग साढ़े चार साल बाद, इन दोनों लक्ष्यों की दिशा में सांप्रदायिक फ़ासीवादी ताक़तें काफ़ी आगे तक का सफ़र तय कर चुकी हैं और हम कह सकते हैं कि हमारे इन सूत्रीकरणों की प्रासंगिकता न सिर्फ़ बनी हुई है बल्कि बढ़ी है।

फ़ासीवादी हिंदुत्व की विनाश-लीला

1.1 राष्ट्रीय सम्मेलन के बाद हुई अपनी पहली कार्यकारिणी बैठक (3 जुलाई 2018) में हम इस नतीजे पर पहुंचे थे कि 'जैसे-जैसे ज़मीनी स्तर पर केंद्र सरकार के आर्थिक विकास संबंधी दावों की पोल खुलती जा रही है और सामाजिक धरातल पर उछाले गये उसके नारों का छद्म सामने आता जा रहा है, चुनावों के मद्देनज़र भाजपा-आरएसएस की सांप्रदायिक ध्रुवीकरण की कोशिशों में तेज़ी आ रही है।' 2018 के उत्तरार्द्ध में केंद्र सरकार की नीतियों के कारण आम जनता में जिस तरह का विरोध देखने को मिल रहा था, उससे यह उम्मीद बंधी थी कि संभवतः 2019 में इनकी वापसी न हो। किसानों के लॉन्ग मार्च और दिल्ली की किसान-मज़दूर रैली को व्यापक जन-समर्थन मिला था। सरकार द्वारा आंकड़ों को गोपनीय रखने के बावजूद बेरोज़गारी दर के पिछले 45 वर्षों में अधिकतम होने की बात सार्वजनिक हो गयी थी और यह ऐसा सच था जिसे आंकड़ों के स्तर पर दबाने-ढंकने में कामयाबी मिल भी जाती तो बहुत फ़र्क़ नहीं पड़ना था, क्योंकि आम आदमी उस सच को अपने दैनंदिन जीवन में अनुभव कर रहा था। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की लोकप्रियता में साफ़ गिरावट दिख रही थी। लेकिन चुनावों से ठीक पहले पुलवामा के आतंकी हमले और उसके बहाने किये गये बालाकोट स्ट्राइक ने मोदी सरकार को पुनर्जीवन दे दिया। पुलवामा प्रकरण के बारे में अनेक सुराग़ इस बात की वाजिब आशंका जगाते हैं कि इसे जानते-बूझते होने दिया गया। बहरहाल, 40 से अधिक सीआरपीएफ़ जवानों की शहादत के बाद अंध-राष्ट्रवादी नारों के बल पर जनता का ध्यान वाजिब मुद्दों की ओर से हटाने में सरकार कामयाब हुई, बालाकोट के नाम पर खुलेआम वोट मांगे गये, चुनाव आयोग और पूरी चुनावी मशीनरी की निष्पक्षता की धज्जियां उड़ीं, और अंततः एक तरह की छल-योजना के सहारे पिछली बार

से ज़्यादा बड़े बहुमत के साथ केंद्र की सत्ता में इनकी वापसी हुई।

1.2 2019 में दुबारा सत्तासीन होने के बाद से फ़ासीवादी हिंदुत्व और अधिक आक्रामक रूप में सामने आया। इस दूसरे दौर में मार्च 2020 के कोरोना महामारी विस्फोट से पहले ही उनके एक-के-बाद -एक क़दम खुद किसी महामारी से कम त्रासद नहीं थे। अगस्त 2019 में धारा 370 और 35 ए को असंवैधानिक या छद्म संवैधानिक तरीक़े से ख़ारिज कर दिया गया, जम्मू और कश्मीर राज्य को तीन केंद्र शासित इकाइयों में तोड़ दिया गया और इसे लागू करने के लिए पूरे कश्मीर को लंबे अरसे के लिए एक जेलख़ाने में तब्दील कर दिया गया। यह अधिग्रहण की शर्तों के तहत देश के एकमात्र मुस्लिम-बहुल राज्य को मिले विशेष ओहदे को ख़त्म करने का एक संविधान-विरोधी क़दम था जिसकी निरंतरता में उसके जनसांख्यिकीय स्वरूप को बदलने की कोशिशें भी लगातार जारी हैं। इसके तुरंत बाद धर्मनिरपेक्षता के संवैधानिक उसूल को धता बताते हुए, धर्म के आधार पर नागरिकता देने वाला नागरिकता संशोधन क़ानून लाया गया जिसे एनआरसी के साथ जोड़कर बड़े पैमाने पर मुस्लिम आबादी को घुसपैठिया क़रार देने और नागरिकता से वंचित करने की मंशा हिंदुत्ववादी ताक़तों ने बिल्कुल साफ़ कर दी। हमने 22 सितंबर 2019 की केंद्रीय कार्यकारिणी बैठक में पारित रिपोर्ट में यह रेखांकित किया था कि 'जब अमित शाह पूरे देश में नागरिकता रजिस्टर बनवाने की बात करते हैं तो उनकी आवाज़ में यह छुपा हुआ आत्मविश्वास भी बोलता है कि काग़ज़ात की छानबीन के मामले में आरएसएस के एजेंडे के हिसाब से असम में जो कमी रह गयी थी, वह अब और जगहों पर नहीं रहेगी; साथ ही, यह आत्मविश्वास भी बोलता है कि जल्द ही संसद में अपनी मज़बूत स्थिति के बल पर वे नागरिकता संशोधन क़ानून ले आयेंगे, जिसके तहत नागरिकता का सबूत बनने वाले काग़ज़ात की कट -ऑफ़ तारीख़ मुसलमानों के लिए 1972 होगी जबकि ग़ैर-मुस्लिमों के लिए 2014 होगी। ज़ाहिर है, इस तरह के रजिस्टर में अपनी जगह न बना पाने वाले लोग मेहनत-मज़दूरी करने वाले वे ग़रीब मुसलमान ही होंगे जो दो जून की रोटी के संघर्ष के बीच 50 साल पहले से भारत में बसे होने के काग़ज़ी सबूत सहेज कर नहीं रख पाये होंगे, या जिनके पास कभी कोई ऐसा काग़ज़ रहा ही नहीं होगा।' 12 दिसंबर 2019 से नागरिकता संशोधन क़ानून लागू हो गया। उसके खिलाफ़ देश भर में शांतिपूर्ण आंदोलन शुरू हुए जिन पर मुस्लिम कट्टरपंथ का लेबल लगाने में केंद्र और राज्यों की भाजपा सरकारों समेत सभी हिंदुत्ववादी ताक़तें जी-जान से लग पड़ीं। उन्हें अंदर और बाहर से तोड़ने की साज़िशों का चरम रूप पूर्वी दिल्ली के एकतरफ़ा दंगों में दिखा जो साफ़ तौर पर आरएसएस-भाजपा के नेताओं के आह्वान पर हुआ था। दिल्ली पुलिस ने उन खुला आह्वान करनेवाले नेताओं को छुआ तक नहीं और स्वयं उनके इशारे पर काम करनेवाले पुलिस बल ने दंगे के पीड़ित समुदाय से ही धड़ाधड़ गिरफ़्तारियां कीं। सीएए के खिलाफ़ शांतिपूर्ण आंदोलन कर रहे अनेक ज़हीन युवाओं को दंगे के साज़िशकर्त्ता के रूप में जेलों में ठूंस दिया गया। उनमें से कई अभी भी अंदर हैं।

1.3 वस्तुतः यह सत्ता पर क़ाबिज़ फ़ासीवादी ताक़तों की रणनीति है कि वे स्वयं अव्यवस्था फैलाते हैं, उपद्रव करते हैं, और जो लोग उस उपद्रव के निशाने पर होते हैं, उन्हीं के बीच से उस उपद्रव के नाम पर गिरफ़्तारियां भी करते हैं। पहली जनवरी 2018 को भीमा कोरेगांव में हिंदुत्ववादियों द्वारा की गयी हिंसा की तहक़ीक़ात करते हुए फ़र्ज़ी सबूतों के आधार पर बुद्धिजीवियों और मानवाधिकार

कार्यकर्त्ताओं की जो गिरफ़्तारी हुई, उससे हम वाक़िफ़ हैं। विभिन्न चरणों में वरवर राव, सुधा भारद्वाज, रोना विल्सन, वरनन गोनजालविस, शोमा सेन, आनंद तेलतुंबड़े, गौतम नवलखा, फ़ादर स्टेन स्वामी, हैनी बाबू समेत 16 ऐसे लोगों की गिरफ़्तारियां हुईं जो अपनी सामाजिक और बौद्धिक सक्रियता के लिए जाने जाते थे और जिनमें से अधिकांश सालों बाद भी जमानत नहीं पा सके हैं। स्टेन स्वामी की तो हिरासत में ही मौत हो गयी। अंतरराष्ट्रीय स्तर की बहुत विश्वसनीय जांच एजेंसियों ने अपनी जांच में यह पाया है कि रोना विल्सन के कंप्यूटर में पायी गयी जिन चिट्ठियों के आधार पर ये गिरफ़्तारियां हुईं, वे एक माल वेयर के ज़रिये उसमें डाली गयी थीं, जिसका मतलब यह हुआ कि इन बुद्धिजीवियों और मानवाधिकार कर्मियों की गिरफ़्तारी के पीछे एक बेहद संगीन साज़िश थी। लेकिन कार्यपालिका के बेहद दबाव में काम कर रही न्यायपालिका इन रहस्योद्घाटनों का कब संज्ञान ले पायेगी, कहना मुश्किल है।

1.4 ठीक यही रणनीति दिल्ली दंगों की जांच के दौरान भी अपनायी गयी और एकदम हाल में हनुमान जयंती, रामनवमी जैसे त्योहारों के दौरान हिंदुत्ववादियों द्वारा मुस्लिम बहुल इलाक़ों में किये गये उपद्रवों के बाद भी। पीड़ित समुदाय को ही सरकारी मशीनरी ने अपने निशाने पर लिया, बड़े पैमाने पर गिरफ़्तारियां कीं, और क़ानून के रक्षकों ने क़ानून की धज्जियां उड़ाते हुए मुसलमानों के घरों को बुलडोज़र से ध्वस्त कर देने का एक नया चलन भी शुरू किया। एक साफ़ पैटर्न देखा जा सकता है कि हिंदुत्ववादी कार्यकर्ता आगे बढ़कर दंगे भड़काते हैं और भाजपा की राज्य सरकारें तथा नगरपालिकाएं पीछे से मुसलमानों के घरों पर बुलडोज़र चलवाती हैं। अदालतों में बुलडोज़र चलाने का कारण उन निर्माणों का अवैध होना बताया जाता है, महीनों पहले नोटिस दिये जाने के झूठे काग़ज़ात दिखाये जाते हैं, जबकि सार्वजनिक भाषणों में भाजपा के मंत्री और मुख्यमंत्री तक साफ़ शब्दों में उसे सबक़ सिखाना कहते हैं। हर मौक़े पर उन्होंने अपनी इस कारस्तानी को बेरोकटोक अंजाम दिया है, सिवाय दिल्ली के जहांगीरपुरी मुहल्ले के, जहां पूर्व राज्यसभा सांसद बृंदा करात के साहसिक हस्तक्षेप से भाजपा शासित नगर निगम को अपना उठाया हुआ क़दम वापस लेना पड़ा।

1.5 इन सारे कामों को कार्यपालिका की ताक़त के निरंकुश इस्तेमाल के ज़रिये अंजाम दिया जा रहा है। प्रशासकीय मशीनरी क़ानून और व्यवस्था की किताबों से नहीं, अपने राजनीतिक आक़ाओं के मनमानेपन से निर्देशित हो रही है। प्रवर्तन निदेशालय, आयकर विभाग, सीबीआई जैसी केंद्रीय संस्थाएं और केंद्र तथा भाजपा के अधीन काम करनेवाली पुलिस—इन सबको विपक्षी पार्टियों और सरकार के आलोचकों के उत्पीड़न में झोंक दिया गया है। विधायिका, न्यायपालिका, मीडिया, बौद्धिक वर्ग—वे सारे ठिकाने जिनके प्रति कार्यपालिका जवाबदेह होती है—निशाने पर हैं और जैसे भी मुमकिन हो, उन्हें उनके कर्तव्यपथ से दूर करना इस सरकार की प्राथमिकताओं में है, भले ही नये सेंट्रल विस्टा में 'राजपथ' का नाम बदलकर 'कर्तव्यपथ' कर दिया गया हो!

1.6 हिंदुत्व-कॉरपोरेट गठजोड़ का प्रतिनिधित्व करती सरकार आलोचनात्मक आवाज़ों को एक मुख़ालिफ़ जनमत का निर्माण करने की इजाज़त नहीं दे सकती। इसीलिए अभिव्यक्ति की आज़ादी को हर स्तर पर कुचला जा रहा है। 12 दिसंबर 2021 की हमारी कार्यकारिणी बैठक ने यह नोट किया था कि 'एनआईए, ईडी, आयकर विभाग, सीबीआई जैसे सभी महकमों को सच्चाई सामने लानेवालों के उत्पीड़न में जोत दिया गया है। ईडी को *न्यूजक्लिक* जैसे मुखर मीडिया संस्थान को तबाह करने के काम

पर लगाया गया; आयकर विभाग को भास्कर समूह के बदलते तेवर से निपटने के काम पर लगाया गया; दिल्ली पुलिस को सीएए विरोधी कार्यकर्ताओं और बुद्धिजीवियों के ख़िलाफ़ झूठे मुक़दमे दायर करने और उन्हें दिल्ली दंगों का साज़िशकर्त्ता साबित करने की ज़िम्मेदारी सौंपी गयी; त्रिपुरा, असम, उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों की भाजपा सरकारों द्वारा वहां की पुलिस को प्रतिबद्ध और ईमानदार पत्रकारों की ख़बर लेने के काम में झोंक दिया गया। पिछले दो साल ऐसी अनगिनत कार्रवाइयों के दो साल हैं [यह कार्यकारिणी बैठक दो साल की अवधि के बाद हो पायी थी]। यूएपीए और राजद्रोह के आरोप लगाने में भाजपा सरकारों के मातहत काम करनेवाले पुलिस बलों ने पिछले सारे रिकार्ड तोड़ दिये हैं। यहां तक कि कई उच्च न्यायालयों और ख़ुद सर्वोच्च न्यायालय को इन्हें फटकार लगानी पड़ी है और इन क़ानूनों की समीक्षा की ज़रूरत को रेखांकित करना पड़ा है। ग़ौर करने की बात यह है कि ऐसी कार्रवाइयों को अंजाम देते हुए केंद्र और राज्यों की भाजपा सरकारें लोकतांत्रिक 'दिखने' की भी कोशिश नहीं करतीं, क्योंकि लेखकों, पत्रकारों, बुद्धिजीवियों और सामाजिक-राजनीतिक कार्यकर्ताओं को ऐसे उदाहरणों से धमकाना उनका ज़्यादा बड़ा मक़सद है।'

1.7 दिसंबर 2021 के बाद से अभिव्यक्ति के दमन की ऐसी घटनाएं बढ़ी ही हैं। 'रिपोर्टर्स विदाउट बॉर्डर्स' द्वारा जारी 2022 के वर्ल्ड प्रेस फ्रीडम इंडेक्स में भारत कई पायदान लुढ़कते हुए 180 में से 150 वें स्थान पर आ गया है। हमने दिसंबर वाली कार्यकारिणी की रिपोर्ट में उच्च न्यायालयों और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा फटकार लगाये जाने की बात का सकात्मक रूप में संज्ञान लिया था, पर विडंबना ही है कि न्यायपालिका ने भी कई मामलों में सरकार के आलोचकों को ख़ासा निराश किया है। आज मुहम्मद ज़ुबैर, तीस्ता सीतलवाड़, सिद्दीक़ कप्पन आदि भले ही जमानत पर रिहा हो गये हों, यह भूलना नहीं चाहिए कि पत्रकार कप्पन को बिना किसी ठोस सबूत के दो साल हिरासत में गुज़ारने पड़े और तीस्ता सीतलवाड़ की तो गिरफ़्तारी ही सर्वोच्च न्यायालय के एक फ़ैसले की व्यंजनाओं के आधार पर हुई थी। 2002 के गुजरात दंगों के मामले में तत्कालीन मुख्यमंत्री नरेंद्र मोदी को क्लीन चिट देनेवाली एसआईटी की रिपोर्ट को ज़किया जाफ़री और तीस्ता सीतलवाड़ द्वारा दायर जिस याचिका में चुनौती दी गयी थी, उसे सर्वोच्च न्यायालय ने सिर्फ़ ख़ारिज ही नहीं किया, उसके साथ यह भी कहा कि याचिका कर्ताओं जैसे लोगों ने अपने जानते झूठे दस्तावेज़ जुटाकर इस मामले को गुप्त इरादों के साथ गरमाये रखने का काम किया है, इसलिए उन्हें भी कठघरे में खड़ा किया जाना चाहिए। सर्वोच्च न्यायालय के ऐसा कहने के अगले ही दिन इस फ़ैसले के लंबे उद्धरणों से सजा एफ़आईआर तीस्ता सीतलवाड़ के ख़िलाफ़ दाख़िल हुआ और उन्हें गिरफ़्तार कर लिया गया। यह शायद अपनी तरह का पहला उदाहरण था जहां कथित अपराधी को सज़ा दिलाने के लिए लंबी क़ानूनी लड़ाई लड़ने वाले को ही अदालत ने कसूरवार ठहराया, वह भी उस दंगे के मामले में जिसके बारे में सर्वोच्च न्यायालय ने ही 2004 के अपने फ़ैसले में कहा था कि 'जब बेस्ट बेकरी और मासूम बच्चे और असहाय महिलाएं जल रही थीं, तब आधुनिक युग के नीरो कहीं और देख रहे थे, और संभवतः विचार कर रहे थे कि इस ज़ुर्म को अंजाम देनेवालों को कैसे बचाया जा सकता है।' सर्वोच्च न्यायालय ने जल्दी ही, 14 जुलाई 2022 को, एक दूसरा उदाहरण भी पेश कर दिया जिसमें एक क़दम आगे बढ़कर न्याय की लड़ाई लड़ रहे याचिकाकर्ता, गांधीवादी समाजकर्मी हिमांशु कुमार पर 5 लाख रुपये का दंड लगा दिया। दांतेवाड़ा में वनवासी चेतना आश्रम चलानेवाले हिमांशु कुमार की ग़लती यह थी कि उन्होंने 2009 में छत्तीसगढ़

पुलिस और केंद्रीय बलों द्वारा कथित रूप से अंजाम दिये गये एक हत्याकांड की सीबीआई जांच के लिए याचिका दायर कर रखी थी।

1.8 बहरहाल, यह संतोष का विषय है कि न्यायपालिका में भी अलग-अलग तरह की आवाज़ें अभी बची हुई हैं, इसीलिए मुहम्मद ज़ुबैर, तीस्ता सीतलवाड़ और सिद्दीक़ कप्पन को जमानत मिल पायी। कुछ ही दिनों पहले एक व्याख्यान देते हुए सर्वोच्च न्यायालय के जस्टिस डी वाई चंद्रचूड़ ने जब हन्ना आरंद के उस कथन को उद्धृत किया कि सर्वसत्तावादी राज्य झूठ का सहारा लेते हैं, और नोम चोम्स्की के उस प्रसिद्ध लेख का हवाला दिया जिसमें वे कहते हैं कि बुद्धिजीवियों का कर्तव्य है सच को सामने लाना और राज्य तथा उसके 'विशेषज्ञों' के झूठों का पर्दाफाश करना, तो हमारे समय के किन सरोकारों की अनुगूंजें उसमें मौजूद थीं, बताने की ज़रूरत नहीं।

1.9 सांप्रदायिक ध्रुवीकरण और मुस्लिम समुदाय को अलग-थलग करने की साज़िशों का जैसा वीभत्स रूप पिछले चार सालों में देखने को मिला है, वह बताता है कि भारतीय *संविधान* की शपथ लेकर उसके बुनियादी धर्मनिरपेक्ष चरित्र के साथ विश्वासघात करने के मामले में इस निज़ाम की बेहयाई अतुलनीय है। अनेक भाजपा शासित राज्यों में धर्मांतरण विरोधी क़ानून की धाराओं या उनमें किये गये संशोधनों का इस्तेमाल/दुरुपयोग मुस्लिम समुदाय के उत्पीड़न के लिए किया जा रहा है। शिक्षण संस्थाओं में हिजाब के इस्तेमाल से लेकर सार्वजनिक जगहों में नमाज़ अदा करने के मसले तक— भाजपा की राज्य सरकारें और उनके ज़मीनी कार्यकर्त्ता बेहद सुनियोजित तालमेल के साथ काम करते नज़र आते हैं।

1.10 मुस्लिम द्वेष के साथ-साथ दलित और स्त्री द्वेष हिंदुत्व की केंद्रीय विशेषताओं में से एक है। हमारे समाज के इन दोनों हिस्सों को वे *मनुस्मृति* द्वारा तय की गयी पारंपरिक भूमिका में ही देखना चाहते हैं। इसी भूमिका में उन्हें महदूद रखने के लिए हिंसा का सहारा लेना एक आम बात है, जो कहीं तो भूमिका का अतिक्रमण न करने की चेतावनी और धमकी के रूप में होती है, कहीं अतिक्रमण करने की सज़ा के रूप में। ऐसी हिंसा में हिंदुत्ववादियों की संलिप्तता और उनके प्रति आरएसएस-भाजपा की सरकारों का लीपा-पोती और संरक्षण वाला रवैया पिछले आठ सालों में बहुत बड़े पैमाने पर देखने को मिला है। दिल्ली राज्य सम्मेलन में पारित 'समाज में बढ़ती हिंसा के ख़िलाफ़ प्रस्ताव' में इस संबंध में बिल्कुल ठीक कहा गया है कि 'घोड़ी चढ़ने पर दलित दूल्हे की पिटाई आम बात है। मंदिर की सीढ़ियां चढ़ने पर, किसी 'ऊंची जाति' वाले को देखकर उठ खड़े न होने पर, ख़ास रिंग टोन पर, गरबा देखने पर, साफ़-सुथरे कपड़े पहनने पर और न जाने कितने कारण-अकारण पर दलित समुदाय के लोग हिंसा के शिकार होते हैं। इधर ऐसे मामलों में हत्या का चलन बढ़ा है। बलात्कार की घटनाएं थमी नहीं हैं लेकिन उनमें नयी बात यह देखने में आ रही है कि बलात्कार और हत्या करने वाले शासन के द्वारा संरक्षित हो रहे हैं। हाथरस का मामला हो या कठुआ का, उन्नाव की घटना हो या इलाहाबाद की, लगभग हर जगह प्रशासनिक व्यवस्था और सत्तारूढ़ पार्टी हमलावरों-हत्यारों-बलात्कारियों को बचाने में मुस्तैद नज़र आती है। केंद्र सरकार ने गये साल संसद में कहा था कि 2018-20 के मध्य दलितों पर अत्याचार के एक लाख चालीस हज़ार मामले दर्ज कराये गये थे। इनमें से साठ हज़ार से अधिक केस अकेले उत्तर प्रदेश में दर्ज हुए थे।'

जनता की तबाही और सरमायेदारों का स्वर्ण-युग

2.1 हिंदुत्व की यह भयावह प्रतिगामी आक्रामकता उदारीकरण की शक्तियों के लिए बहुत मुफ़ीद है। आम तौर पर माना जाता है कि समाज में शांति और सुव्यवस्था वाणिज्य-व्यवसाय के लिए अनुकूल वातावरण मुहैया कराती है। लेकिन उदारीकरण के पिछले तीन दशकों में सामाजिक असमानता और मेहनतकशों की तबाही जिस स्तर तक जा पहुंची है, उसमें नवउदारवादी नीतियों को आम जन के असंतोष का निशाना बनने से रोकने के लिए ध्यान भटकाने वाले मुद्दे और नये-नये दुश्मन ज़रूरी हैं। निस्संदेह, हिंदुत्ववादी शक्तियां इस काम को अंजाम देने में सबसे अधिक कुशल और सक्षम हैं।

2.2 1980 के दशक से जारी और 1991 के बाद से लगातार तीव्रतर होती उदारीकरण-निजीकरण-भूमंडलीकरण की प्रक्रिया ने आज इस देश को जहां पहुंचाया है, वही इसकी नियति थी। 'वर्ल्ड इनइक्वालटी रिपोर्ट 2018' ने भारत के बारे में यह तथ्य उद्घाटित किया कि 80 के दशक से जारी सुधारों के नतीजे के तौर पर ऊपर के 0.1% कमाऊ लोग आर्थिक वृद्धि का जितना हिस्सा हड़पते रहे हैं, वह नीचे के 50% कमाऊ लोगों के कुल हिस्से से भी अधिक है। 1982 में शीर्ष 1% के पास कुल राष्ट्रीय आय का 6% था, 2013-14 तक आते-आते वह 22% हो गया। ऐसी ग़ैर-बराबरी 80 के दशक से दुनिया के सभी हिस्सों में बढ़ती पायी गयी है, कहीं थोड़ी कम और कहीं ज़्यादा। उस रिपोर्ट के जारी होने के बाद एक साक्षात्कार में रिपोर्ट के लेखकों में से एक, विख्यात अर्थशास्त्री थॉमस पिकेट्टी ने कहा कि अगर दुनिया अमेरिका के नक़्शे-क़दम पर चलती रही तो ग़ैर-बराबरी के ये हालात और विकराल होंगे।

2.3 नवउदारवादी नीतियों के साथ हमारे यहां ग़ैर-बराबरी ही नहीं बढ़ी, ग़रीबी का परिमाण जांचने वाली अन्य कसौटियों पर भी आम जन की मुश्किलें बढ़ी हैं जो ट्रिकल डाउन अर्थशास्त्र के खोखलेपन को दिखाता है। इस ग़रीबी को हम औसत कैलोरी उपभोग के पैमाने से समझ सकते हैं, जैसा कि अर्थशास्त्री प्रभात पटनायक ने अपने एकाधिक लेखों में बताया है। 1993-94 से लेकर 2011-12 तक—एनएसएस के दीर्घ नमूना सर्वे के अनुसार—ग्रामीण क्षेत्रों में 2200 कैलोरी आहार से वंचित लोगों की संख्या 58% से बढ़कर 68% हो गयी और शहरी क्षेत्रों में 2100 कैलोरी आहार से वंचितों की संख्या 57% से बढ़कर 65% हो गयी (ग्रामीण क्षेत्र में 2200 कैलोरी और शहरी क्षेत्र में 2100 कैलोरी की उपलब्धता न होने को ग़रीबी का मापदंड माना गया है)। प्रभात पटनायक का मानना है कि 2011-12 के बाद हालात और बदतर हुए हैं और तमाम तरह के आंकड़ों की प्रतिकूलता को देखते हुए ही 2017-18 के दीर्घ नमूना सर्वे के आंकड़ों को मोदी सरकार ने सार्वजनिक नहीं होने दिया तथा पुराने स्वरूप में सर्वे को बंद करने का फ़ैसला लिया। लेकिन 2017-18 के आंकड़ों को दफ़न करने के बावजूद लीक होकर जो जानकारियां सामने आयीं, उनसे पता चलता है कि 2011-12 से लेकर 17-18 के बीच ग्रामीण क्षेत्रों में उपभोग-व्यय (Consumption Expenditure) में 9% की गिरावट आयी जो आज़ाद भारत में सर्वाधिक है। यही समय था जब बेरोज़गारी दर के पिछले 40 सालों में अधिकतम होने के आंकड़े भी सामने आये।

2.4 ये सारी बातें कोरोना संकट से पहले की हैं। न तो बेरोज़गारी का, न उपभोग-व्यय में आयी गिरावट का और न ही निर्धारित कैलोरी आहार की उपलब्धता में आयी कमी का ठीकरा कोरोना के सिर फोड़ा जा सकता है। कोरोना काल में यह पूरी बदहाली अपने चरम पर पहुंची, यह अलग बात है।

हम सभी इस बात के गवाह रहे हैं कि इस महामारी के दौर में सिर्फ़ सरकारी लापरवाही और मनमानेपन के कारण समस्या कितनी विकराल हो गयी। पहली लहर के दौरान प्रधानमंत्री द्वारा बिना किसी सलाह-मशवरे के औचक लॉकडाउन की घोषणा और उसके बाद चोटी के अर्थशास्त्रियों द्वारा दिये गये अनाज -वितरण संबंधी सुझावों की अनदेखी के कारण मेहनतकश जनता ने कैसी दारुण यातना झेली, यह बताने की ज़रूरत नहीं। दूसरी लहर में सरकार की लापरवाही, चुनावी दौरों में व्यस्त रहते हुए इस लहर की चेतावनियों की उपेक्षा, वैक्सीन की अनुपलब्धता जैसे कारणों ने लाखों लोगों को काल का ग्रास बना दिया। स्थिति यहां तक हुई कि लाशें बिना जलाये हुए नदियों में बहायी जाने लगीं और रेत में धंसी हुई लाशों के दृश्य पूरी दुनिया में भारत के शासकों की लापरवाही की मुनादी करने लगे। इसके बावजूद आरएसएस-भाजपा ने सरकार के कोरोना-प्रबंधन का गुणगान करने में कोई कसर बाक़ी नहीं रखी और वह आज तक जारी है। लोगों के अनुभवों को झुठलाते और ठोस तथ्यों पर पर्दा डालते हुए झूठ का ऐसा जाल रचना इन्हीं के लिए संभव है। विश्व की जानी-मानी संस्थाओं ने अपने आकलन के आधार पर यह बताया है कि इस सरकार ने बड़े पैमाने पर कोरोना से हुई मौतों के आंकड़े छुपाये हैं।

2.5 सरकार की आपराधिक लापरवाही अगर कोरोना संकट को बढ़ाने की एक वजह थी, तो दूसरी वजह थी वित्तीय पूंजी की ग़ुलामी। इस भयावह संकट की मार झेलती मेहनतकश आबादी के लिए अगर मोदी सरकार कोई क़ायदे का राहत-पैकेज नहीं ला पायी तो उसकी वजह यह ग़ुलामी भी थी। 15 मई 2020 को वित्त मंत्री ने 20 लाख करोड़ के जिस राहत पैकेज की घोषणा की, वह सिर्फ़ एक छलावा था। अर्थशास्त्रियों के आकलन के अनुसार उसमें वास्तविक राजकोषीय हस्तांतरण मात्र 1.65 लाख करोड़ से 1.9 लाख करोड़ रुपये का था जो कि इतनी बड़ी त्रासदी को देखते हुए कुछ भी नहीं था। ऐसा क्यों हुआ? प्रभात पटनायक ने इसे साफ़ करते हुए लिखा: 'अगर वह ख़र्चा करेगी, तो राजकोषीय घाटा बढ़ जायेगा। उस सूरत में क्रेडिट रेटिंग एजेंसियां उसकी रेटिंग नीचे खिसका सकती हैं और इसके फलस्वरूप वैश्वीकृत वित्तीय पूंजी हमारी अर्थव्यवस्था से उड़कर जा सकती है। मोदी सरकार में इसकी हिम्मत तो है नहीं कि ऐसी सूरत पैदा होने पर वित्त के बाहर जाने पर अंकुश लगा सके। इसके बजाय वह तो वित्तीय पूंजी के आगे घुटने टेकने में ही ख़ुद को सुरक्षित समझती है। इसके लिए वह अपने ख़र्चे पर ही अंकुश लगा रही है। वैसे ग़रीबों के प्रति इस सरकार की निष्ठुरता से भी यह रवैया मेल खाता है। संक्षेप में यह कि जनता के हितों और वैश्वीकृत वित्तीय पूंजी के फ़रमानों के बीच की इस टक्कर में, मोदी सरकार बड़ी मज़बूती से वैश्वीकृत वित्तीय पूंजी के साथ है। विडंबना यह है कि वही सरकार आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था के निर्माण की बातें कर रही है और वास्तव में आत्मनिर्भरता की लफ़्फ़ाज़ी का सहारा लेकर, वैश्वीकृत वित्तीय पूंजी के आगे अपने दंडवत होने को ही ढांपने की कोशिश कर रही है।'

2.5 कोरोना त्रासदी के दौरान देश के करोड़ों लोगों की रोज़ी-रोटी छिन गयी। एक आकलन के अनुसार, 2020 में 4.6 करोड़ भारतीय अपनी अब तक की माली हालत से लुढ़ककर ग़रीबी के रसातल में पहुंच गये, जो पूरे विश्व में इस दौरान ग़रीबी के रसातल में पहुंची आबादी का लगभग आधा ठहरता है। 2021 के वैश्विक भूख सूचकांक में भारत 116 देशों के बीच 101 वें स्थान पर था और 27.5 के स्कोर के साथ इसे 'गंभीर' की श्रेणी में रखा गया था। पर इसी बीच, जब देश की मेहनतकश आबादी का बड़ा हिस्सा फ़ाक़ाकशी का शिकार हो रहा था, भारत के चरम धनिकों/सुपर रिच की

आमदनी दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ रही थी। जनवरी 2022 में ऑक्सफ़ैम इंडिया ने 'इनइक्वालिटी किल्स' शीर्षक से जो रिपोर्ट प्रकाशित की, उसने यह हैरतअंगेज़ उद्घाटन किया कि महामारी के दौरान (मार्च 2020 से नवंबर 2021 के बीच) जहां देश के 84 फ़ीसद परिवारों की आमदनी में गिरावट आयी, वहीं बिलियनेयर्स (खरबपतियों) की संख्या 102 से बढ़कर 142 हो गयी और उनकी कुल संपदा 23.14 लाख करोड़ से बढ़कर 53.16 लाख करोड़ तक जा पहुंची। 'सेंटर फ़ॉर मोनिटरिंग इंडियन इकॉनमी' के अध्ययन के अनुसार, बीएसई में सूचीबद्ध कंपनियों ने 2021 के अप्रैल महीने से 2022 के मार्च महीने तक सम्मिलित रूप से 9.3 लाख करोड़ का मुनाफ़ा कमाया। यह उससे पिछले वित्तीय वर्ष के मुक़ाबले 70 फ़ीसद से भी ज़्यादा है और महामारी से पहले के एक पूरे दशक (2010-11 से 2019-20 तक) के सालान औसत मुनाफ़े से तीन गुना अधिक। महामारी के पहले वर्ष यानी 2020-21 में भी यह मुनाफ़ा ठीक पिछले साल के मुक़ाबले दोगुना था। महामारी के दूसरे वर्ष में तो एक नया रिकार्ड ही क़ायम हो गया।

2.6 'इनइक्वालिटी किल्स' शीर्षक अध्ययन को प्रकाशित करते हुए ऑक्सफ़ैम का निष्कर्ष था कि 'भारत में संपदा की यह तीखी ग़ैर-बराबरी उस आर्थिक व्यवस्था का नतीजा है जो ग़रीब और हाशियाकृत लोगों के ख़िलाफ़ चरम धनिकों के पक्ष में धांधली का शिकार है।' धनिकों-पूंजीपतियों के पक्ष में व्यवस्थागत धांधली उदारीकरण के बाद से कोई नयी बात नहीं है। नयी बात है, उस धांधली का पैमाना और उसे अंजाम देने का खुला खेल, जो मौजूदा निज़ाम में ही संभव हो पाया है। 2014-15 से 2020-21 के बीच इस सरकार ने टैक्स इंसेटिव्स (प्रोत्साहन) के नाम पर कॉरपोरेट करदाताओं को 6.15 लाख करोड़ की छूटें दीं और बैंकों ने 10.72 लाख करोड़ के कर्ज़ों को बट्टा खाते में डालकर एक नयी मिसाल क़ायम की। 2019 में मोदी सरकार ने कॉरपोरेट टैक्स दर को 30 फ़ीसद से घटाकर 22 फ़ीसद कर दिया। इससे कॉरपोरेट क्षेत्र को 1.45 लाख करोड़ का तोहफ़ा मिला। सरकार का तर्क था कि इससे निवेश बढ़ेगा; निवेश बढ़ने से रोज़गार मिलेंगे और कुल मांग बढ़ेगी; यानी अर्थव्यवस्था को आगे की ओर धक्का मिलेगा। पर ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। बेरोज़गारी में कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा और निवेश भी जैसा-तैसा ही रहा। यानी कुल मिलाकर, पूंजीपतियों की जेबें भर गयीं और देश के आमजन की बदहाली बरक़रार रही।

2.6 जनता के हाथ में पैसा न होने के कारण कुल मांग में कमी और उसके कारण पूंजीवादी बाज़ार में गतिरोध एक ऐसी स्थिति के लिए ज़िम्मेदार हैं जहां औने-पौने दामों में सरकारी उपक्रम, ज़मीन और खनिज जैसे प्राकृतिक संसाधनों की मिल्कियत देकर पूंजी का पेट भरा जाता है। सरमायेदारों को अकूत लाभ पहुंचाने की यह प्रक्रिया व्यापक जन-असंतोष का कारण बन सकती है, और यहीं राष्ट्रवादी लफ़्फ़ाज़ी से लेकर सांप्रदायिक ध्रुवीकरण तक, हिंदुत्व की पूरी कार्यसूची नवउदारवाद के उद्धारक की भूमिका में सामने आती है। वह यह सुनिश्चित करती है कि जनता का असंतोष असली मुद्दों से भटका रहे।

शिक्षा और साहित्य-कला-संस्कृति : आलोचनात्मक चेतना के सभी ठिकानों पर हमला

3.1 ऐसी तमाम बौद्धिक और कलात्मक गतिविधियां जो राष्ट्रवादी लफ़्फ़ाज़ी, सांप्रदायिक ध्रुवीकरण के प्रयासों और सरमायेदारों को अकूत लाभ पहुंचाने की प्रक्रिया का पर्दाफ़ाश करती हैं, आरएसएस-

भाजपा की सरकार के निशाने पर हैं। हमने पीछे पत्रकारों और मानवाधिकारकर्मियों तथा बुद्धिजीवियों के दमन की चर्चा की। इसी की निरंतरता में शिक्षा और साहित्य-कला-संस्कृति के क्षेत्र में चल रही ज़्यादतियों को भी देखने की ज़रूरत है।

3.2 शिक्षण-संस्थानों से आलोचना की संस्कृति को नेस्तनाबूद करने की कोशिशें एनडीए-1 के दौर में ही बड़े पैमाने पर शुरू हो गयी थीं। उस समय हम जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, हैदराबाद सेंट्रल यूनिवर्सिटी, जाधवपुर यूनिवर्सिटी, फ़िल्म एंड टेलिविज़न इंस्टिट्यूट ऑफ़ इंडिया (पुणे), आईआईटी मद्रास, दिल्ली विश्वविद्यालय जैसी संस्थाओं में आरएसएस के विद्यार्थी संगठन यानी अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद की फ़ासीवादी कार्यशैली और उसे मिलने वाली केंद्र सरकार की शह के साक्षी रहे। उसके बाद इन सभी जगहों पर तो यह सिलसिला कमोबेश जारी रहा ही, साथ में जामिया मिलिया इस्लामिया, अलीगढ़ विश्वविद्यालय और अन्य अनेक जगहों पर ऐसे उदाहरण दुहराये गये। सरकार और हिंदुत्ववादियों की आलोचना करने वालों को एंटी-नेशनल बताकर हिंसक हंगामे करना, उनके ख़िलाफ़ प्रशासनिक स्तर पर साज़िशें करना और आतंक का माहौल बनाकर आलोचनात्मक आवाज़ों को ख़ामोश करना परिसरों में रोज़मर्रा की बात है। नियुक्तियों में बड़े पैमाने पर आरएसएस के लोगों को घुसाकर ज़्यादातर विश्वविद्यालयों और संस्थानों का संघटन अपने अनुकूल बनाने की मुहिम छेड़ दी गयी है और, ज़ाहिर है, इसका अकादमिक गुणवत्ता पर बेहद बुरा असर पड़ा है। शिक्षा-संस्थानों में संगोष्ठी-सेमीनार आदि के विषय-निर्धारण में प्रशासन की दख़लंदाज़ी बहुत बढ़ी है। सत्ता से असहमत वक्ता नहीं बुलाये जाते और ऐसे विषय नहीं रखे जाते जिससे असुविधा हो। पाठ्यक्रमों तथा पाठ्यपुस्तकों को आरएसएस के एजेंडे के अनुरूप बदलने का अभियान लगातार चल रहा है। कोविड से परेशान विद्यार्थियों के लिए पाठ्यक्रम का बोझ कम करने के नाम पर एनसीईआरटी की किताबों, विशेषतः इतिहास और राजनीतिशास्त्र की किताबों में से जिन हिस्सों को हटाया गया है, उनका एक सर्वेक्षण *इंडियन एक्स्प्रेस* अख़बार ने किया और पाया कि आंदोलन, प्रतिरोध, आलोचना इत्यादि से संबंधित हिस्सों पर ही कैंची चली है। पाठ्यक्रमों को भारतीय ज्ञान परंपरा के नाम पर वैज्ञानिक चेतना के ख़िलाफ़ मोड़ने की कोशिशों के अनेक उदाहरण इस बीच सामने आये हैं।

3.3 राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, जो व्यापक सलाह-मशवरे और राज्य सरकारों के साथ विचार-विमर्श के बग़ैर पारित की गयी, मुख्यतः शिक्षा के केंद्रीकरण, व्यावसायीकरण और सांप्रदायीकरण का लक्ष्य लेकर सामने आयी है। एक ओर नवउदारवादी नीतियों के तहत यह शिक्षा को बाज़ार की ताक़तों की मुनाफ़ाखोरी के लिए पूरी तरह से खोल देने को कृतसंकल्प है, तो दूसरी तरफ़ हिंदुत्व के एजेंडे के तहत वैज्ञानिक चेतना की जगह अंधविश्वास और अविवेक को बढ़ावा देने के लिए कटिबद्ध है।

3.4 साहित्य और कला के संस्थान भी उदारीकरण और हिंदुत्व के एजेंडों के गहरे दबाव में हैं। पिछले सम्मेलन की रिपोर्ट में हमने साहित्य अकादमी, लालित कला अकादमी, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय और अनेक अन्य संस्थाओं तथा पुस्तकालयों को मिलने वाले वित्तपोषण में आयी कमी और इस संबंध में बने नये 'मेमरैन्डम ऑफ़ अन्डर्स्टैन्डिंग' का विस्तार से उल्लेख किया था। उसका नकारात्मक प्रभाव अब इन संस्थाओं पर साफ़ दिखायी पड़ने लगा है। हर चीज़ के लिए इन जगहों पर उपयोग-शुल्क देना होता है जो साहित्य-कला-संस्कृति को प्रोत्साहन देने की इनकी बुनियादी संकल्पना से बिल्कुल उलट है।

3.5 ज़्यादातर संस्थान हिंदुत्ववादियों या उनके प्रति समर्पण-भाव रखने वाले प्रशासकों के क़ब्ज़े में हैं। कहने को तो ये स्वायत्त संस्थाएं हैं जिनकी स्वायत्तता सरकारी वित्त-पोषण में कटौती आने के बाद शायद और बढ़नी चाहिए थी, पर हो ठीक उल्टा रहा है। इन ठिकानों पर आलोचनात्मक विवेक से संपन्न कोई सार्थक आयोजन हो, दूरगामी महत्त्व की कोई नेकनीयत परियोजना सामने आये, यह अब कल्पनातीत हो चुका है। इनके मंचों से प्रगतिशील पहचान वाले रचनाकार भी जब सावधान और निरापद भाषण देते हैं, इस अंदाज़ में अपनी बात रखते हैं जैसे उनके देशकाल में लिंचिंग, बुलडोज़र, दलित और स्त्री उत्पीड़न, बुद्धिजीवियों और मानवाधिकारकर्मियों की गिरफ़्तारी कोई समस्या ही नहीं हैं, तब समझ में आता है कि संस्थानों पर क़ब्ज़े का मतलब क्या है!

3.6 हालांकि हिंदी के साहित्यिक परिदृश्य में हिंदुत्ववादी ताक़तों की कोई ग़ौरतलब पैठ नहीं बन पायी है, यह चिंता का विषय ज़रूर है कि रचनाकारों की एक अच्छी-ख़ासी संख्या राजनीति और समाज के इन हालात के प्रति मुखर होने से परहेज़ बरत रही है। यह कितना डर की वजह से है, कितना किसी संभावित लाभ से वंचित रह जाने की आशंका के कारण, और कितना इन हालात के प्रति विकसित हुई अभ्यस्तता के कारण, कहना मुश्किल है। संतोष का विषय यह है कि रचना के स्तर पर इस यथार्थ को व्यक्त करने का महत्त्व अभी बचा हुआ है और ऐसी कृतियां बड़ी संख्या में सामने आ रही हैं जो बताती हैं कि रचनाकार हिंसक हालात के प्रति न सिर्फ़ अभ्यस्त और असंवेदनशील नहीं हुए हैं बल्कि उस पर प्रतिक्रिया करना साहित्य की पहली जवाबदेही मानते हैं, भले ही रचना से इतर किसी प्रतिरोध-पहल में जवाबदेही का यह भाव उसी शिद्दत से परिलक्षित न होता हो।

प्रतिरोध ज़िंदा है

4.1 तमाम प्रतिकूल परिस्थितियों के बीच प्रतिरोध की जैसी गतिविधियां इस बीच देखने को मिली हैं, वे हमें निराशा से उबारती भी हैं और दिशा भी दिखाती हैं। किसानों का लंबा और बेहद कष्टसाध्य ऐतिहासिक संघर्ष न सिर्फ़ कॉरपोरेट-परस्त कृषि क़ानूनों को निरस्त कराने में सफल रहा बल्कि उसने यह भी साबित कर दिया कि वाजिब मुद्दों पर एकजुट लड़ाई जनता को बांटने वाली सांप्रदायिक-जातिवादी विचारधाराओं को भी शिकस्त देती है। हमने दिसंबर 2021 की कार्यकारिणी बैठक में इस बात का संज्ञान लिया था कि 'किसान आंदोलन सभी जनपक्षधर शक्तियों के लिए एक प्रकाश-स्रोत की तरह उभरा है। जितनी प्रतिकूल परिस्थितियों में यह आंदोलन अभूतपूर्व एकता और अनुशासन का प्रदर्शन करते हुए साल भर से ज़्यादा चला, वह पूरी दुनिया के लिए एक नज़ीर है। दिल्ली की सीमाओं पर जमे इन किसानों के दबाव में केंद्र सरकार को तीनों कृषि क़ानूनों को वापस लेना पड़ा और अन्य पांच मांगों की पूर्ति के लिए ठोस क़दम उठाने का आश्वासन देना पड़ा। इसके बावजूद, 'संयुक्त किसान मोर्चा' ने आंदोलन को समाप्त करने की नहीं, स्थगित करने की ही घोषणा की है।... वे जानते हैं कि सभी किसानों को न्यूनतम समर्थन मूल्य मिलने की क़ानूनी गारंटी या लिखित प्रावधान न होने की स्थिति में अंततः इन कृषि क़ानूनों के बग़ैर भी उन्हें कॉरपोरेट का ग़ुलाम बनाया जा सकता है और यह सरकार इसमें कोई कसर नहीं छोड़ने वाली है। वस्तुतः उपनिवेशोत्तर दौर में उष्णकटिबंधीय और समशीतोष्णकटिबंधीय तीसरी दुनिया के देशों में भूमि उपयोग के पैटर्न को बदलने के लिए साम्राज्यवाद के पास उन देशों की सरकारों द्वारा कृषि को दी जा रही मदद को समाप्त करवाने के

अलावा कोई उपाय नहीं है। तीनों कृषि क़ानून इसी रूप में साम्राज्यवाद की सेवा के लिए लाये गये थे। उन्हें वापस लेने के बाद भी सरकार के लिए यह संभव है कि वह समर्थन मूल्य की व्यवस्था से अपने हाथ खींचकर साम्राज्यवाद की मंशाओं के पूरा होने की राह हमवार करे। इस निज़ाम की नीयत को पहचानकर ही एमएसपी की आधिकारिक गारंटी की मांग किसान आंदोलन ने की है। इसीलिए प्रभात पटनायक उचित ही इसे 'साम्राज्यवाद पर किसानों की जीत का आंदोलन' मानते हैं और इस बात को रेखांकित करते हैं कि नव-उदारवादी दौर में जहां पूरी दुनिया में जनता की प्रत्यक्ष कार्रवाई से दूरगामी नीतियों के प्रभावित होने के उदाहरण मिलने बंद हो गये थे, यह आंदोलन प्रत्यक्ष कार्रवाई की कामयाबी का दुर्लभ उदाहरण है।'

4.2 इसी तरह नागरिकता (संशोधन) क़ानून के ख़िलाफ़ दिल्ली के शाहीन बाग़ से शुरू हुए अभूतपूर्व आंदोलन ने पूरी दुनिया का ध्यान खींचा। कोरोना की तालाबंदी ने देश के अलग-अलग हिस्सों में बने शाहीन बाग़ों के प्रतिरोध-आंदोलन पर रोक लगायी और उससे ठीक पहले पूर्वी दिल्ली के पूर्वनियोजित मुस्लिम-विरोधी दंगों ने उस आंदोलन को एक बड़ा झटका दिया। एनआरसी और एनपीआर के मुद्दों के कुछ समय के लिए ठंडे बस्ते में चले जाने के कारण इस आंदोलन की कोई दूसरी लहर उठने की नौबत नहीं आयी है, पर इसने यह दिखा दिया कि देश की इतनी बड़ी मुस्लिम आबादी को नागरिकता साबित करने की लाइनों में खड़ा कर देने की साज़िश को कामयाब बनाना लोहे के चने चबाना है।

4.3 देश के सभी जागरूक विश्वविद्यालय परिसरों ने भी तानाशाही के आगे न झुकने की मिसालें क़ायम की हैं। प्रशासन की मिलीभगत के साथ अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद के नक़ाबपोश गुंडों के क़ातिलाना हमलों के बावजूद जनेवि में वामपंथी छात्र-संगठनों को हतोत्साह नहीं किया जा सका है। पूर्वी दिल्ली में दंगे फैलाने के झूठे आरोप में सीएए विरोधी आंदोलन में शामिल कई विद्यार्थियों को हिरासत में लिया गया, जिनमें से अनेक अभी भी अंदर हैं, इसके बावजूद परिसरों के राजनीतिक माहौल में कोई पस्ती नहीं है। ऐसी ही एक छात्रा सफ़ूरा जरगर की शोध-प्रगति को असंतोषजनक बताकर जामिया मिलिया ने उनका एमफ़िल का दाख़िला रद्द कर दिया और आंदोलनकारी गतिविधियों के नाम पर परिसर में उनका प्रवेश भी वर्जित कर दिया, लेकिन ऐसा लगता नहीं कि जामिया का विद्यार्थी समुदाय इस फ़ैसले को आसानी से अमल में आने देगा। ये सभी उदाहरण उम्मीद जगाते हैं।

4.2 प्रतिरोध के मोर्चे पर लेखकों की बहुत सक्रियता न होने के बावजूद यह कहना ग़लत होगा कि उनकी ओर से कोई पहल नहीं हुई। हमारे पिछले सम्मेलन से पहले लेखकों के पुरस्कार-वापसी अभियान ने जिस तरह का सरगर्म माहौल तैयार किया था और हिंदुत्ववादी असहिष्णुता की ओर लोगों का ध्यान खींचा था, वैसा पिछले चार सालों में नहीं हो पाया, लेकिन विभिन्न लेखक-संगठनों के एकजुट अभियान ने उसे पूरी तरह बुझने नहीं दिया है। 2020 के 1 मार्च को 'हम देखेंगे' के नाम से जलेस, जसम, प्रलेस, दलेस समेत अनेक संगठनों ने दिल्ली के जंतर-मंतर पर सीएए-एनआरसी-एनपीआर के ख़िलाफ़ लेखकों-कलाकारों का अखिल भारतीय सम्मेलन आयोजित किया। उसके बाद इसी नाम से ये संगठन तालाबंदी के दौरान ऑनलाइन कार्यक्रम आयोजित करते रहे, जिनमें किसान आंदोलन के पक्ष में किये गये आयोजन प्रमुख थे। एक मोर्चे की तरह 'हम देखेंगे' में जनवादी लेखक

संघ सक्रिय रहा और दिल्ली की सीमाओं पर किसानों के जमावड़ों में भी इस मोर्चे के साथी लेखक एकजुटता प्रदर्शन के लिए जाते रहे। 2022 की शुरुआत में अनेक अन्य स्वतंत्र लेखकों के साथ मिलकर 'हम देखेंगे' नाम को विस्तार दिया गया : 'अखिल भारतीय सांस्कृतिक प्रतिरोध अभियान', जिसकी ओर से अपील जारी की गयी कि विभिन्न शहरों के लेखक और लेखक संगठन 2022 को प्रतिरोध वर्ष के रूप में मनायें और अपनी महत्त्वपूर्ण हस्तियों की जन्मतिथि या पुण्यतिथि पर प्रतिरोध के कार्यक्रम आयोजित करें। महात्मा गांधी की शहादत के दिन से इसकी शुरुआत हुई और उस दिन हिंदी-उर्दू प्रदेश के अनेक शहरों में या तो गांधी की प्रतिमा के सामने या ऑनलाइन ऐसे आयोजन हुए। जनवादी लेखक संघ की इकाइयों ने इनमें आगे बढ़कर पहल ली। पर हमें स्वीकार करना चाहिए कि यह सिलसिला जिस तरह सोचा गया था, उस तरह चल नहीं पाया और सितंबर महीने में पीछे मुड़कर देखने पर छिटपुट कार्यक्रम तो दिखते हैं, पर प्रतिरोध-वर्ष जैसा कुछ नज़र नहीं आता। व्यापक लेखक समाज की भागीदारी का न होना, संभवतः, इसका प्रधान कारण है। प्रतिरोध कार्यक्रमों का कोई भी सिलसिला कुछ आयोजकों के भरोसे नहीं चल सकता, यह इस अनुभव का सबक़ है। आयोजक भी लेखक समाज की नगण्य भागीदारी से हतोत्साह होते हैं, और यह चीज़ आयोजनों के क्रमशः विरल होते चले जाने में प्रतिफलित होती है। इस अनुभव का यह भी सबक़ है कि अगर साझा मोर्चे में हर संगठन से एक या दो नुमाइंदे शामिल किये जायें और शेष संगठन उस ज़िम्मेदारी से ख़ुद को बरी मान ले, तो साझेपन से जो बड़ी ताक़त उभरनी चाहिए, वह नहीं उभर पाती। फिर मोर्चा ख़ुद एक सीमित कार्यकर्ता-संख्या वाले संगठन की तरह हो जाता है। नुमाइंदे साझा मोर्चे की बातों को अपने-अपने संगठनों तक पहुंचायें और वे संगठन अपनी पूरी क्षमता से साझा मोर्चे के आयोजनों को कामयाब बनाने में जुटें, तभी साझेपन का कोई मतलब है।

हमारी सांगठनिक स्थिति

5.1 केंद्र : इन चार सालों में जलेस केंद्र का कामकाज, कुछ तो महामारी की वजह से और कुछ दफ़्तर की जगह बार-बार बदलने के कारण, किसी हद तक प्रभावित हुआ है। 2019 के अगस्त महीने में हमें 42, अशोक रोड का कमरा खाली करना पड़ा। *न्यूज़क्लिक* के दफ़्तर में हमें जगह मिली। यह अशोक रोड की तरह ही एक निःशुल्क व्यवस्था थी। फिर 2021 में *न्यूज़क्लिक* पर ईडी का छापा पड़ा। *न्यूज़क्लिक* का ही हिस्सा मानकर हमारे सामानों की भी जांच की गयी और हमारी अनुपस्थिति में उन्होंने हमारे पूरे दफ़्तर को उलट-पुलट कर रख दिया। हार्ड डिस्क की कॉपी करने के लिए उन्होंने हमारे कंप्यूटर के पार्ट-पुर्ज़े भी अलग कर दिये और उन्हें उसी हाल में छोड़ गये। इसके कुछ समय बाद *न्यूज़क्लिक* के लिए भी उस जगह को खाली करने की नौबत आने पर हमें भी वहां से हटना पड़ा। दो महीने तक पास के एक कबाड़खाना-नुमा कमरे को किराये पर लेकर हमने वहां अपना सामान बंद रखा और फिर चिल्ला गांव, मयूर विहार में एक क़ायदे की जगह मिलने के बाद हम अगस्त 2021 में वहां स्थानांतरित हो गये। यह जगह 11 महीने के क़रार पर मिली थी, लेकिन आठ महीने बाद उस फ्लैट के बिक जाने की सूरत में हमें एक बार फिर नयी जगह तलाशनी पड़ी। अप्रैल 2022 से हम पूर्वी दिल्ली के खिचड़ीपुर गांव के एक फ्लैट में हैं जो इस लिहाज़ से एक गुप्त ठिकाना ही कहा जायेगा कि अभी तक एक संयुक्त महासचिव और एक राष्ट्रीय सचिव (मनोज कुलकर्णी) के अलावा किसी और साथी

ने उसे देखा भी नहीं है।

5.1.1 विपरीत परिस्थितियों में भी हम केंद्रीय कार्यकारिणी और परिषद की बैठकें करने, उनमें आये सुझावों के अनुरूप कार्यक्रम आयोजित करने, बयान जारी करने और राज्यों के साथ संपर्क-सहकार के कामों को यथासंभव अंजाम देते आये हैं। तालाबंदी के महीनों को छोड़कर शेष समय हमारे काम की गति को संतोषजनक कहा जा सकता है। हमने केंद्रीय कार्यकारिणी और परिषद की तीन संयुक्त बैठकें कीं: 22 सितंबर 2019 (दिल्ली), 12 दिसम्बर 2021 (दिल्ली), और 14 अप्रैल 2022 (कतरास)। इनके अलावा केंद्रीय कार्यकारिणी की एक बैठक 3 जुलाई 2018 को दिल्ली में हुई और विशेष मुद्दों पर दिल्ली के केंद्रीय कार्यकारिणी एवं परिषद सदस्यों की दो बैठकें 21 अगस्त 2018 तथा 24 अक्टूबर 2019 को हुईं। विस्तारित कार्यकारी मंडल की एक बैठक 11 अगस्त 2018 को हुई और कार्यकारी मंडल की दो बैठकें 12 जुलाई 2019 तथा 10 अप्रैल 2022 (ऑनलाइन) को हुईं।

5.1.2 केंद्रीय कार्यकारिणी की पहली बैठक में हमने कामों का बंटवारा किया और विशेष निजी परिस्थितियों के कारण कुछ साथी दी गयी ज़िम्मेदारी पूरी तरह भले न निभा पाये हों, ज़्यादातर साथियों ने कमोबेश अपना काम पूरा किया। इस दिशा में जो कुछ बेहतर तरीक़े से हो सकता था और जिन कामों में पदाधिकारी मंडल तथा कार्यकारिणी के सदस्यों द्वारा अपनी ओर से पहल ली जा सकती थी / लिये जाने की ज़रूरत थी, उन पर नयी कार्यकारिणी को खुलकर विचार करना चाहिए। संभवतः अपनी ओर से पहल लेने वाले पहलू पर सबसे अधिक विचार करने की ज़रूरत है, सौंपी गयी ज़िम्मेदारी को पूरा करने पर बल देने की ज़रूरत तो है ही। पिछले सम्मेलन की रिपोर्ट में कही गयी यह बात आज भी प्रासंगिक है कि ज़िम्मेदारियों का ठीक बंटवारा न होने, या अलग-अलग सदस्यों को सौंपी गयी ज़िम्मेदारियों का उनके द्वारा निर्वाह न होने की स्थिति में ही ये सारे काम अंततः गिनती के लोगों को निपटाने पड़ते हैं। यह उन सदस्यों के अपने कामों—वे लेखन से संबंधित हों या निजी नौकरी और परिवार से संबंधित—में तो बाधक होता ही है, संगठन की जनवादी कार्यप्रणाली के लिए भी नुक़सानदेह होता है। उत्तरदायित्व के केंद्रीकरण का मतलब अधिकारों का केंद्रीकरण भी है। इसलिए उत्तरदायित्वों का जितना अधिक विकेंद्रीकरण हो पायेगा, सांगठनिक जनवाद उतना ही फूले-फलेगा। सम्मेलन से इस दिशा में कुछ सुझाव निकलने चाहिए।

5.1.3 इस अवधि में हमने चार कार्यशालाओं की योजना पर काम किया लेकिन उनमें से एक के आयोजन में ही हमें कामयाबी मिली। जयपुर में 'रचना-प्रक्रिया और विचारधारा' पर केंद्रित कार्यशाला (30/09/2018-02/10/2018) बहुत सफल रही जिसके वक्तव्यों से *नया पथ* का एक संग्रहणीय अंक भी तैयार हुआ। साहित्येतिहास लेखन पर केंद्रित अलीगढ़ कार्यशाला, जो 7-9 दिसंबर 2019 के लिए तय थी, किन्हीं अपरिहार्य कारणों से नहीं हो पायी। इसी तरह स्त्री-लेखन पर केंद्रित कार्यशाला आयोजित करने के बारे में हमने फ़ैसला लिया, भोपाल ने उसके आतिथ्य की ज़िम्मेदारी भी ली, लेकिन कोरोना महामारी की शुरुआत हो जाने के कारण हम उस दिशा में आगे नहीं बढ़ पाये।

5.1.4 कोरोना की तालाबंदी में हमारे एक और महत्त्वकांक्षी कार्यक्रम की बलि चढ़ गयी। 15/03/2020 को रांची में अखिल भारतीय उर्दू कन्वेन्शन करने की हमारी तैयारियां पूरी हो चुकी थीं, पर कन्वेन्शन से दो दिन पहले झारखंड सरकार द्वारा कोरोना के मद्देनज़र लोगों के इकट्ठा होने पर पाबंदी लगाये जाने के कारण उसे रद्द करना पड़ा। इससे केंद्र, झारखंड इकाई और संयोजक साथी एम. ज़ेड.

ख़ान की महीनों की मेहनत पर पानी फिर गया और काफ़ी आर्थिक नुक़सान भी हुआ। झारखंड इकाई के आतिथ्य में कतरास (धनबाद) में आयोजित केंद्रीय कार्यक्रम, 'राहुल सांकृत्यायन सृजन पर्व' (13-14 अप्रैल 2022) काफ़ी सफल रहा। इसके अलावा इन साढ़े चार सालों की अवधि में केंद्र द्वारा स्वतंत्र रूप से मात्र छह संगोष्ठियां आयोजित की जा सकीं। आयोजन के स्तर पर केंद्र की भागीदारी वाले अधिकांश कार्यक्रम जसम, प्रलेस, दलेस आदि संगठनों के साथ साझा कार्यक्रम के रूप में हुए।

5.1.5 साझा कार्यक्रमों की नीति पर हम 2015 से अमल करते आये हैं। नौवें सम्मेलन की रिपोर्ट में उस पर विस्तृत चर्चा थी। इस रिपोर्ट में भी पैरा 4.4 इसी पर केंद्रित है जहां 'अखिल भारतीय सांस्कृतिक प्रतिरोध अभियान : हम देखेंगे' के संबंध में जानकारी दी गयी है। वस्तुतः 1 मार्च 2020 के बड़े आयोजन के अलावा भी इस अवधि में हमने अपने ज़्यादातर आयोजन अन्य हमख़याल संगठनों के साथ मिलकर ही किये हैं। 'देशप्रेम के मायने' शृंखला हो या किसान आंदोलन के पक्ष में कार्यक्रमों की शृंखला, सभी साझा कार्यक्रम थे। 2022 को प्रतिरोध वर्ष के रूप में मनाने के सिलसिले में गांधी, ग़ालिब, फ़ैज़, राहुल सांकृत्यायन, *प्रेमाश्रम* आदि पर केंद्रित ऑनलाइन-ऑफ़लाइन कार्यक्रम भी साझा आयोजन थे। ऐसे वैचारिक-साहित्यिक कार्यक्रमों तथा 10 से अधिक विरोध-प्रदर्शन एवं एकजुटता-प्रदर्शन के आयोजनों का हम हिस्सा बने।

5.1.6 बयान जारी करने के मामले में हमारा बल साझा बयानों पर रहा, लेकिन कई बार जब मुद्दे अविलंब प्रतिक्रिया के लायक़ थे, हमने सहमति बनाने की अपेक्षाकृत समय-साध्य प्रक्रिया में जाने के बजाय स्वतंत्र रूप से बयान जारी किये। महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर 15 साझा बयानों में हम शामिल रहे और उनका मसौदा बनाने में भी हमारी पहल रही। राजनीतिक-सामाजिक-सांस्कृतिक महत्त्व के लगभग 25 बयान हमने स्वतंत्र रूप से जारी किये। लेखकों-कलाकारों के इंतकाल पर लगभग 40 शोक-संदेश भी हमने जारी किये। ज़्यादातर बयान कार्यकारिणी और परिषद के सदस्यों को ई-मेल से मिलते रहे हैं और वे हमारे कार्यकारी अध्यक्ष चंचल चौहान द्वारा पूरी मुस्तैदी से जलेस की वेबसाइट पर भी डाले जाते रहे हैं। कुछ शोक-संदेश शायद मेल या वेबसाईट में न मिलें। ये ऐसे शोक-संदेश हैं जो किन्हीं कारणों से सिर्फ़ जलेस की फ़ेसबुक में पोस्ट किये जा सके।

5.1.7 केंद्र की त्रैमासिक पत्रिका *नया पथ* इस बीच कमोबेश नियमित निकलती रही। कोरोना की बंदी के दौरान भी, जब प्रिंट में उसका प्रकाशन और वितरण संभव नहीं था, हमने निःशुल्क पीडीएफ़ के रूप में *नया पथ* को अपने पाठकों तक पहुंचाया। पिछले कुछ वर्षों के लगभग सभी अंक पीडीएफ़ तथा ई-बुक के रूप में जलेस की वेबसाइट पर उपलब्ध हैं जिसका श्रेय वरिष्ठ साथी चंचल चौहान को जाता है। 'रचना-प्रक्रिया और विचारधारा', 'आततायी सत्ता और प्रतिरोध (दो अंक), और 'कोरोना-काल और विश्व पूंजीवाद का संकट' पर केंद्रित अंक अत्यंत महत्त्वपूर्ण माने गये। इसी तरह 'पुस्तक समीक्षा' पर केंद्रित दो अंक और 'साहिर लुधियानवी जन्मशती विशेषांक' बहुत मक़बूल हुए। वेबसाइट पर साहिर लुधियानवी विशेषांक के अविकल रूप में उपलब्ध होने के बावजूद अभी तक उसकी मांग आती रहती है।

5.1.8 वेबसाइट और सोशल मीडिया पर हमारी सक्रियता में ख़ासी बेहतरी की गुंजाइश है। हम इन माध्यमों का इस्तेमाल आवश्यक जानकारियां देने भर के लिए कर रहे हैं, पर उनकी पहुंच का दायरा

बढ़ाने के बारे में सोचने की ज़रूरत है। हम अपनी वेबसाइट को पेशेवर अंदाज़ में आकर्षक और व्यवस्थित नहीं बना पाये हैं जबकि दुनिया के किसी भी कोने में बैठा व्यक्ति हमारे नाम से परिचित होने पर सबसे पहले हमारी वेबसाइट पर ही जाना चाहता है। इसी तरह, हमने फ़ेसबुक का ख़ाता तो बनाया, पर फ़ेसबुक पेज नहीं बना पाये जो उसकी पहुंच और क्षमता को बढ़ाता। केंद्र के स्तर पर इन कामों को आगे गंभीरता से लेने की ज़रूरत है।

5.2 **राज्य** : इस राष्ट्रीय सम्मेलन से पहले ज़्यादातर राज्य इकाइयों ने अपने सम्मेलन आयोजित किये और नयी कार्यकारिणी तथा पदाधिकारियों का चुनाव किया, यह सांगठनिक दृष्टि से एक स्वस्थ रुझान है। बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, झारखंड, दिल्ली और राजस्थान के सम्मेलन बारी-बारी से हुए। सभी सम्मेलन अपने खुले सत्रों की सार्वजनिक भागीदारी तथा सांगठनिक आम सभा की भागीदारी के लिहाज़ से बहुत संतोषजनक कहे जायेंगे। हरियाणा में कई वर्षों बाद राज्य सम्मेलन हो पाया, इसलिए वहां तदर्थ कमेटी गठित की गयी है जो ज़िला इकाइयों को पुनः सक्रिय करने के बाद राज्य कार्यकारिणी के गठन के लिए एक और राज्य सम्मेलन करायेगी। छत्तीसगढ़ ने अपना दूसरा राज्य सम्मेलन 2019 में किया और जल्द ही तीसरा राज्य सम्मेलन करने की योजना है। पश्चिम बंगाल और महाराष्ट्र के राज्य सम्मेलन इस अवधि में नहीं हो पाये हैं। हिमाचल प्रदेश की इकाई को पुनरुज्जीवित करने की ज़रूरत है।

5.2.1 केंद्र द्वारा प्रतिरोध-वर्ष की शुरुआत करने के आह्वान पर ज़्यादातर राज्यों की अनुक्रिया सकारात्मक थी, जैसा कि हमने पीछे भी उल्लेख किया है, लेकिन ऐसा लगता है कि केंद्र और राज्यों के बीच और अधिक तालमेल के साथ काम हो तो जलेस की इकाइयों वाले सभी राज्यों में एक साथ, यानी एक ही तारीख़ और समय में, किसी ख़ास मुद्दे पर प्रतिरोध की आवाज़ बुलंद की जा सकती है।

5.2.2 केंद्र की सहमति से साथी एम. ज़ेड. ख़ान ने रांची से *जलेस ख़बर* निकालने की शुरुआत की है जिसमें सभी राज्यों में होनेवाली गतिविधियों की ख़बर हिंदी-उर्दू में शाय होगी। उन्हें तमाम इकाइयों का सहयोग मिले और रपटें नियमित तौर पर प्राप्त हों तो *जलेस ख़बर* के माध्यम से सभी राज्य एक-दूसरे की सक्रियता से अवगत और प्रेरित हो पायेंगे। इस बुलेटिन के नियमित होने की सूरत में केंद्र की रिपोर्ट में भी राज्यों की गतिविधियों का संज्ञान सविस्तार लिया जा सकेगा।

जनवादी लेखक संघ के दसवें राष्ट्रीय सम्मेलन में पारित प्रस्ताव
जयपुर, 23-25 सितंबर 2022

इतिहास के सांप्रदायीकरण के ख़िलाफ़ प्रस्ताव

सांप्रदायिक विचारधारा अपने को सही ठहराने के लिए इतिहास का इस्तेमाल करती है। इतिहास के सांप्रदायीकरण की शुरुआत उपनिवेशीकरण के दौर में हुई जब भारत के इतिहास को साम्राज्यपरस्त अंग्रेज़ विद्वानों ने हिंदू युग, मुस्लिम युग और आधुनिक युग में विभाजित कर देखने की शुरुआत की। औपनिवेशिक शासकों के इतिहास के सांप्रदायीकरण की इस कोशिश को हिंदू और मुस्लिम संप्रदायवादियों ने चुनौती देने के बजाय यथावत स्वीकार कर लिया और यह मान लिया कि हिंदू और मुस्लिम दो भिन्न राष्ट्र हैं जो एक साथ नहीं रह सकते। इसी का नतीजा भारत का विभाजन था। आरएसएस और हिंदू महासभा ने हिंदुओं के सांप्रदायीकरण की मुहिम के लिए इतिहास को एक हथियार की तरह इस्तेमाल किया। अपनी इस सांप्रदायिक विचारधारा को सावरकर ने 'हिंदुत्व' नाम दिया था जो आरएसएस की विचारधारा का भी आधार है और इसे वह राष्ट्रवाद की विचारधारा मानता है। इतिहास के सांप्रदायीकरण का उद्देश्य विभिन्न धर्मों, जातियों और संस्कृतियों वाले इस बहुलतावादी देश को 'हिंदू राष्ट्र' में रूपांतरित करना है -- एक ऐसे धार्मिक राष्ट्र के रूप में जहां धार्मिक अल्पसंख्यकों को नागरिक अधिकारों से वंचित किया जा सकता है और जिसका आधार वह मनुवादी वर्ण-व्यवस्था होगी जो जातिवादी श्रेणीबद्धता में यक़ीन करती है। दरअसल, इतिहास के सांप्रदायीकरण का औचित्य वे 'राष्ट्रवाद' के नाम पर साबित करते हैं।

हिंदुत्व की विचारधारा के आधार पर इतिहास को देखने का ही नतीजा है कि वे इतिहास में ऐसे मुद्दों को विशेष तरजीह देते हैं जिनसे यह साबित किया जा सके कि मुस्लिम शासकों ने हिंदुओं की संपत्ति को लूटा, उनकी स्त्रियों को बेइज़्ज़त किया, उनके मंदिरों और अन्य धार्मिक स्थलों को तोड़कर मस्जिदों का निर्माण किया और तलवार के बल पर उनको धर्म परिवर्तन के लिए मजबूर किया। इन बातों को सही ठहराने के लिए उन्होंने इतिहास के तथ्यों के साथ बड़े पैमाने पर छेड़खानी की, उन्हें अतिरंजित रूप में रखा और झूठी बातों को तथ्य बनाकर जनता के मन में उतारने की कोशिश की। जबकि मध्युगीन इतिहास की सच्चाई यह है कि विभिन्न राजाओं के बीच होने वाले संघर्ष धर्म के आधार पर नहीं होते थे। राजा हिंदू हो या मुसलमान उनकी सेना में हिंदू और मुसलमान दोनों होते थे।

जिन मुसलमानों को विदेशी कहा जा रहा है, वे दरअसल उन पड़ोसी राज्यों के थे, जहां से लोगों का आना जाना सदियों से चला आ रहा था। राष्ट्र की पूरी संकल्पना एक आधुनिक संकल्पना है। यही नहीं धार्मिक और पौराणिक कथाओं को इतिहास बताक़र वास्तविक इतिहास से उनको पदस्थापित किया जा रहा है। रामजन्मभूमि आंदोलन एक ऐसा ही आंदोलन था जो इतिहास के तथ्यों पर नहीं बल्कि पूरी तरह से काल्पनिक और गढ़ी गयी बातों पर आधारित था और जिसने भारत की बहुलतावादी संस्कृति के ताने-बाने को नष्ट-भ्रष्ट करने में अहम भूमिका निभायी।

हिंदुत्ववादी सांप्रदायिक ताक़तें पिछले आठ साल से सत्ता में हैं और इतिहास के सांप्रदायीकरण की उनकी कोशिशें पहले के किसी भी समय से ज़्यादा तीव्रता और उग्रता से जारी हैं। इसके लिए इतिहास की पुस्तकों का बड़े पैमाने पर पुनर्लेखन हो रहा है। पाठ्यपुस्तकों को भी सांप्रदायिक नज़रिये से लिखवाया जा रहा है और ऐसी फ़िल्मों और टीवी धारावाहिकों को प्रोत्साहित किया जा रहा है जिनमें हिंदुत्ववादी नज़रिये से इतिहास को पेश किया गया हो। उन पुस्तकों को जिनमें इतिहास को वस्तुपरक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से पेश किया गया हो, उन्हें जनता तक पहुंचने से रोका जा रहा है। इतिहास के तोड़-मरोड़ की उनकी कोशिशों का ही नतीजा है कि पिछले आठ सालों में एक बार फिर से मंदिर-मस्जिद के विवाद खड़े किये जा रहे हैं। वाराणसी ओर मथुरा सहित कई धर्मस्थलों को हिंदुत्ववादी ताक़तें अपनी सांप्रदायिक मुहिम के लिए हथियार की तरह इस्तेमाल कर रही हैं।

इस तरह मौजूदा सांप्रदायिक फ़ासीवादी सरकार के संरक्षण और प्रोत्साहन में चलायी जा रही इतिहास के सांप्रदायीकरण की यह मुहिम जनता के बीच पहले से जारी फूट को और उग्र और हिंसक बनाने में उत्प्रेरक का काम कर रही है, देश को एकजुट बनाये रखने के लिए जिसे रोका जाना ज़रूरी है। यह इसलिए भी ज़रूरी है कि विभिन्न धर्मों और जातियों के बीच सद्भाव और सौहार्द बना रहे। जनवादी लेखक संघ का यह दसवां राष्ट्रीय सम्मेलन इतिहास के सांप्रदायीकरण की इस मुहिम की घोर निंदा करता है और यह मांग भी करता है कि इतिहास के सांप्रदायीकरण की इस मुहिम को हर हाल में रोका जाना चाहिए। इतिहास लेखन का काम पेशेवर इतिहास लेखकों का है। यह काम उन्हीं पर छोड़ दिया जाना चाहिए और राजसत्ता को इस काम में प्रत्यक्ष या परोक्ष किसी भी तरह की दख़लंदाज़ी नहीं करनी चाहिए।

बुद्धिजीवियों, मानवाधिकार कर्मियों, पत्रकारों और विद्यार्थियों की रिहाई के पक्ष में प्रस्ताव

जब से मोदी सरकार सत्ता में आयी है, हर उस आवाज़ को दबाने की और हर उस क़दम को कुचलने की कोशिश की जा रही है जो इस सरकार के संविधान विरोधी, लोकतंत्र विरोधी और जनविरोधी क़दमों की आलोचना करते हैं। यह सरकार किसी भी तरह की आलोचना बर्दाश्त नहीं करती; बल्कि ऐसे सभी लोगों को झूठे मामलों में फंसाकर उन्हें सलाख़ों के पीछे भेज रही है और विडंबना यह है कि दो-दो, तीन-तीन साल बाद भी न उन्हें जमानत दी जा रही है और न ही उन पर मुक़दमा चलाया जा रहा है। इनमें बुद्धिजीवी, मानवाधिकार कार्यकर्त्ता, पत्रकार और विद्यार्थी शामिल हैं और जो यह मानते हैं कि *संविधान* ने उन्हें यह अधिकार दिया है कि वे चुनी हुई सरकारों की न केवल आलोचना कर सकते हैं बल्कि वे सार्वजनिक रूप से प्रदर्शन कर, रैली निकालकर, लिखकर और बोलकर सरकार के जनविरोधी फ़ैसलों के विरुद्ध अपना प्रतिरोध दर्ज करा सकते हैं।

नागरिकता संशोधन क़ानून के नाम पर जिस तरह नागरिकता को धर्म के साथ जोड़ा गया, उसके विरुद्ध शांतिपूर्ण ढंग से आवाज़ उठाने वाले 19 कार्यकर्ता लगभग तीन सालों से जेलों में बंद हैं। भीमा कोरेगांव के फ़र्ज़ी मामले में अब भी तेरह बुद्धिजीवी और मानवाधिकार कार्यकर्ता तीन साल से अधिक समय से जेल में बंद है और जमानत तो दूर उन पर चार्जशीट तक फ़ाइल नहीं हुई है। 85 साल के स्टेन स्वामी इस उत्पीड़नकारी कारवाई के कारण गिरफ़्तारी के दौरान ही दिवंगत हो गये। इस मामले में बंद लोगों में गौतम नवलखा और आनंद तेलतुम्बड़े जैसे प्रख्यात बुद्धिजीवी भी शामिल हैं और उन्हें मामूली सी सुविधाओं के लिए भी संघर्ष करना पड़ता है जो उन्हें जेल नियमों के तहत ही आसानी से मिल जानी चाहिए थी। दिल्ली विश्वविद्यालय के अध्यापक जी एन सांईबाबा विकलांग हैं, उन्हें माओवादी कहकर जेल में बंद कर दिया गया है और वे कई सालों से बिना मुक़दमे के जेल में हैं। गुजरात दंगों का पर्दाफाश करने वाले संजीव भट्ट और आर श्रीकुमार कई सालों से जेल में बंद हैं। विडंबना यह है कि गुजरात के दंगा पीड़ितों के पक्ष में पिछले बीस साल से संघर्ष करने वाली सामाजिक कार्यकर्ता तीस्ता सीतलवाड को भी जेल में बंद कर दिया गया और उन्हें बड़ी मुश्किल से सुप्रीम कोर्ट से जमानत मिल पायी। दिल्ली में हुए दंगे के मनगढ़ंत आरोप में जेएनयू के शोधछात्र उमर ख़ालिद पिछले दो साल से जेल में बंद हैं और कहीं कोई सुनवाई नहीं है। स्थिति इतनी भयावह है कि मुस्लिम समुदाय को तो छोटी-छोटी बातों के लिए बड़ी और कड़ी सज़ा देने में सरकार की सभी संस्थाएं एकजुट हो गयी हैं। नारे लगाने या जुलूस निकालने पर जो भारतीय नागरिक होने के कारण उनका लोकतांत्रिक अधिकार है, उन्हें जेलों में बंद कर दिया जाता है और उनके घरों और दुकानों पर बुलडोज़र चलाया जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कार्यपालिका हो या न्यायपालिका सब की डोर हिंदुत्वपरस्त ताक़तों के हाथ में आ चुकी है। एक अनुमान के अनुसार एक हज़ार से अधिक लोग राजनीतिक बदले की भावना से जेलों में बंद हैं और उन पर यूएपीए (अनलॉफ़ुल एक्टिविटीज़ (प्रिवेंशन) एमेंडमेंट एक्ट-2008) और राजद्रोह की धाराएं लगा दी गयी हैं ताकि उनके लिए जमानत

तक हासिल करना मुश्किल हो जाये। मोदी सरकार ने यूएपीए क़ानून में एक ऐसा संशोधन किया है जिसके अनुसार सरकार जिस किसी भी व्यक्ति को आतंकवादी घोषित कर सकती है और उसे न्यायालय को यह बताने की भी ज़रूरत नहीं है कि आतंकवादी घोषित करने का उसके पास क्या आधार है।

जनवादी लेखक संघ का यह दसवां राष्ट्रीय सम्मेलन सरकार के इस फ़ासीवादी दमन की घोर निंदा करती है और यह मांग करता है कि उन सभी राजनीतिक और सामाजिक कार्यकर्ताओं, बुद्धिजीवियों, पत्रकारों और विद्यार्थियों को तत्काल रिहा करे जो यूएपीए और राजद्रोह जैसे उत्पीड़नकारी क़ानूनों के तहत सालों से जेलों में बंद हैं। हम सर्वोच्च न्यायालय से भी मांग करते हैं कि वह इस मामले में तत्काल हस्तक्षेप करे और ऐसे सभी लोगों को जमानत देकर जेलों से रिहा करे। साथ ही, यह राष्ट्रीय सम्मेलन इस बात की मांग भी करता है कि यूएपीए और राजद्रोह के दमनकारी क़ानूनों को तत्काल समाप्त किया जाये। ये दोनों क़ानून हमारे *संविधान* की मूल संकल्पना के विरुद्ध हैं और इनसे मानवाधिकारों का घोर उल्लंघन भी होता है।

शिक्षा के व्यावसायीकरण के ख़िलाफ़ प्रस्ताव

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद शिक्षा के लोकतंत्रीकरण, धर्मनिरपेक्षीकरण और समानता पर आधारित सार्वभौमिकीकरण के लिए जो क़दम उठाये जाने चाहिए थे, कमोबेश सभी सरकारों ने वे क़दम या तो आधे-अधूरे ढंग से उठाये या उनके विपरीत क़दम उठाये गये। शिक्षा की अंतर्वस्तु वैज्ञानिक और लोकतांत्रिक मूल्यों पर आधारित होनी चाहिए थी लेकिन इन पक्षों की सदैव उपेक्षा की गयी। इसी का नतीजा है कि आज भी भारत में अंधविश्वास, रूढ़िवाद ओर अविवेकीकरण का बोलबाला है। देश के सभी बच्चों को गुणात्मक दृष्टि से श्रेष्ठ शिक्षा प्रदान करना लोकतांत्रिक देश में सरकारों का दायित्व है; लेकिन शिक्षा के व्यावसायीकरण ने इसे लगभग असंभव बना दिया है। लगातार महंगी होती शिक्षा ने ग़रीब और निम्नमध्यवर्ग के परिवारों के लिए उच्च शिक्षा हासिल करना भी असंभव बना दिया है। निश्चय ही शिक्षा क्षेत्र की इन समस्याओं के हल के लिए उनमें व्यापक सुधार की आवश्यकता है। और ऐसा तभी हो सकता है जब शिक्षा व्यवस्था सभी स्तरों पर अपने सारतत्व में धर्मनिरपेक्ष, वैज्ञानिक और लोकतांत्रिक मूल्यों पर आधारित हो और समानता के मूल्यों पर आधारित शिक्षा का सार्वभौमिकीकरण किया जाये। यह तभी मुमकिन है जब शिक्षा का आमूलचूल रूपांतरण किया जाये और सरकारें प्राथमिकता के स्तर पर इस पर काम करें।

लेकिन दुर्भाग्यपूर्ण यह है कि मौजूदा सरकार शिक्षा में लोकतांत्रिक सुधारों के बजाय एक ऐसी राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020) देश पर थोप रही है जो हमारी शिक्षा व्यवस्था में आधे-अधूरे और कमज़ोर ढंग से ही सही अंतर्निहित स्वायत्तता, वैज्ञानिकता, धर्मनिरपेक्षता और लोकतांत्रिकता के पक्षों को न केवल और कमज़ोर करेगी बल्कि उन्हें नष्ट कर देगी।

इस कथित नयी राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था का मकसद विकेंद्रीकरण को समाप्त कर उसका पूरी तरह केंद्रीकरण करना है ताकि उसे 'शिक्षा' के बजाय बाज़ार में ख़रीदी और बेची जाने वाली वैश्विक

उपभोग की वस्तु में तब्दील कर दिया जाये। सरकारी स्कूलों को बंद कर उन्हें विशाल परिसरों में विलीन करना, राष्ट्रीय टेस्टिंग एजेंसी द्वारा पूरे देश में एक सी परीक्षा आयोजित कर प्रवेश प्रक्रिया का केंद्रीकरण करना, मिश्रित अध्यापन पद्धति को लागू करना, चार वर्षीय स्नातक पाठ्यक्रम लागू करना, दो उपाधियों का अध्ययन एक साथ करने की सुविधा प्रदान करना आदि दरअसल शिक्षा के व्यावसायीकरण को और व्यापक और तीव्र करने की दिशा में उठाये गये विनाशकारी क़दम हैं। इसी तरह कक्षा छह से व्यवसाय केंद्रित शिक्षा, अविवेकपूर्ण भाषा नीति, कक्षा नौ से सेमेस्टर प्रणाली लागू करना और बहु आगमन-निर्गमन व्यवस्था के साथ बहुअनुशासनात्मक अभिगम प्रणाली और एकेडमिक बैंक क्रेडिट व्यवस्था हमारे देश में अभी तक शिक्षा क्षेत्र में लागू, सीखने की बोधगम्य पद्धति को छिन्न-भिन्न कर देगी। चार साल के स्नातक पाठ्यक्रम के बाद ही पीएच डी में प्रवेश देना और एम फ़िल को समाप्त करना और राष्ट्रीय अनुसंधान न्यास की स्थापना भी अंतत: देश में अनुसंधान की मौजूद व्यवस्था को नष्ट कर देगी। इनके अलावा नयी शिक्षा नीति प्राचीन भारतीय ज्ञान प्रणाली के नाम पर इतिहास और विज्ञान को नष्ट कर निर्लज्जतापूर्वक रूढ़िवाद, अवैज्ञानिक, विभाजनकारी और सांप्रदायिक विचारों वाली शिक्षा को प्रोत्साहित करेगी। यह कहना किसी भी तरह अतिशयोक्ति नहीं होगी कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 दरअसल शिक्षा के निजीकरण, व्यावसायीकरण, केंद्रीयकरण और सांप्रदायीकरण के दृष्टिपत्र के सिवा कुछ नहीं है।

जनवादी लेखक संघ का दसवां राष्ट्रीय सम्मेलन इस बात में यक़ीन करते हुए कि शिक्षा ही मानवजाति के विकास, परस्पर सौहार्द और वैश्विक शांति और सद्भाव के मार्ग को प्रशस्त कर सकती है, यह मांग करता है कि इस जनविरोधी, शिक्षा विरोधी राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 को तत्काल प्रभाव से निरस्त किया जाये। केंद्रीय और राज्यों के बजट में शिक्षा के लिए कम से कम दस प्रतिशत धन का आवंटन किया जाये। प्राइमरी से लेकर उच्च शिक्षा तक शिक्षकों के जो भी पद रिक्त हैं उन्हें तत्काल भरा जाये और स्कूलों से लेकर विश्वविद्यालय तक शिक्षकों से लेकर ग़ैरशिक्षकों तक के पद स्थायी किये जायें। मोदी सरकार के सत्ता में आने के बाद से बताया जाता है कि लगभग 75 हज़ार स्कूलों को मर्जर के नाम पर बंद कर दिया गया है। मर्जर की इस योजना को भी तत्काल प्रभाव से बंद किया जाये और बंद स्कूलों को वापस शुरू किया जाये और वहां स्थायी अध्यापकों की नियुक्ति की जाये। सेमेस्टर प्रणाली को समाप्त किया जाये। शिक्षा के केंद्रीकरण पर रोक लगायी जाये और पहले की तरह शिक्षा को राज्यों के अधीन ही रहने दिया जाये। इतिहास के सांप्रदायीकरण की कोशिशों को भी बंद किया जाये और अंत में आंख मूंदकर ऑनलाइन शिक्षा को लागू न करते हुए कक्षा आधारित शिक्षा को ही प्राथमिकता दी जाये।

धर्मनिरपेक्षता और लोकतंत्र की रक्षा के सवाल पर प्रस्ताव

कोई देश कितना धर्मनिरपेक्ष और लोकतांत्रिक है इसका प्रमाण उसके *संविधान* में लिखे होने से नहीं मिलता; बल्कि इस बात से मिलता है कि उस देश की शासन व्यवस्था और उससे जुड़ी संस्थाएं जिनमें विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका तीनों शामिल हैं, इन आधारभूत मूल्यों के प्रति कितनी ईमानदार हैं और अपनी कार्यप्रणाली में किस हद उन्हें लागू कर पाती हैं। धर्मनिरपेक्ष, समाजवादी और

लोकतांत्रिक गणराज्य की स्थापना के उद्देश्य को *संविधान* में घोषित किये जाने के बावजूद सच्चाई यह है कि आरंभ से ही इन मूल्यों के प्रति राजनीतिक दलों का और लोकतांत्रिक संस्थाओं का रवैया ढुलमुल रहा है। *संविधान* के इन महान मूल्यों के बावजूद आरंभ से ही जो सबसे बड़े अंतर्विरोध भारतीय लोकतांत्रिक गणराज्य में अंतर्निहित रहे हैं, वे हैं राजनीतिक व्यवस्था का पूंजीवादी चरित्र और सामाजिक व्यवस्था पर ब्राह्मणवादी वर्णव्यवस्था का वर्चस्व।

आज़ादी के 75 साल का इतिहास इस बात का गवाह है कि न तो शोषण और उत्पीड़न पर आधारित पूंजीवादी व्यवस्था को कमज़ोर किया जा सका है और न ही ब्राह्मणवादी और सांप्रदायिक ताक़तों को परास्त किया जा सका है। इसके विपरीत वे राजनीतिक ताक़तें कमज़ोर होती चली गयीं जो धर्मनिरपेक्षता, लोकतंत्र और सामाजिक न्याय पर यक़ीन करती थीं और आज भारतीय राजसत्ता पर उन ताक़तों का वर्चस्व है जिनका न तो धर्मनिरपेक्षता में यक़ीन है, न लोकतंत्र में और न ही सामाजिक न्याय में। भारतीय *संविधान* के ये मूल्य केवल संविधान की किताब तक ही सीमित रह गये हैं। पिछले तीस सालों में जिस तरह धर्मनिरपेक्षता और लोकतंत्र पर प्रहार किया जाता रहा है, उसी का नतीजा है कि आज एक ऐसी पार्टी राजसत्ता पर क़ाबिज़ है जिसकी आधारभूत विचारधारा हिंदुत्व है जो सांप्रदायिक फ़ासीवाद की विचारधारा है और जिसका विरोध धर्मनिरपेक्षता से भी है, लोकतंत्र से भी है और सामाजिक न्याय से भी। यही नहीं वह संघात्मक गणराज्य में भी यक़ीन नहीं करता।

भाजपा और संघ परिवार का लक्ष्य धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक और समाजवादी भारतीय गणराज्य को ख़त्म करना और हिंदू राष्ट्र की स्थापना करना है। समाजवादी लक्ष्य को तो कांग्रेस ही ध्वस्त कर चुकी है; लोकतंत्र को चुनावी राजनीति में घटाया जा चुका है जहां मतदाता भारतीय नागरिक के रूप में नहीं, धर्म और जाति के आधार पर वोट देने के लिए ही शुरू से प्रशिक्षित किये गये हैं। लोकतंत्र को मज़बूत करने वाली संस्थाएं लगातार कमज़ोर होती गयी हैं जिसका पूरा लाभ संघ परिवार उठाता रहा है। यह महज़ संयोग नहीं है कि कांग्रेस शासन के दौरान ही बाबरी मस्जिद का ताला खोला गया और वहां पूजा करने की इजाज़त दी गयी और बाबरी मस्जिद भी तोड़ी गयी। बाबरी मस्जिद तोड़ने के अपराधियों को सज़ा देना तो बहुत दूर की बात है, सर्वोच्च न्यायालय उस स्थान पर मंदिर बनाने की इजाज़त दे चुका है और राम का भव्य मंदिर बन रहा है। यही नहीं, संघ परिवार की नज़र अब वाराणसी और मथुरा पर है। हिंदुत्व के नाम से मंदिर-मस्जिद विवाद खड़ा करके फ़ासीवादी ताक़तों ने सत्ता हासिल की है, इसलिए वे इसी तरह के विवाद हर बार खड़े करके ही सत्ता में बने रहने की चाल चल रहे हैं।

पिछले तीन दशकों से धर्मनिरपेक्षता पर लगातार हमले हो रहे हैं। हालांकि इस अवधारणा को 'सर्व धर्म समभाव' के नाम पर शुरू से ही हल्का किया जाता रहा है। पहले छद्म धर्मनिरपेक्षता और वास्तविक धर्मनिरपेक्षता का द्वैत पैदा किया गया और अब धर्मनिरपेक्षता को लगभग गाली में बदल दिया गया है। धर्मनिरपेक्षता के विरुद्ध इस ज़हरीले अभियान का नतीजा यह है कि धर्मनिरपेक्ष पार्टियां भी इस मुद्दे पर चुप्पी साधे रहती हैं। भारतीय गणराज्य की इन बुनियादों के कमज़ोर होते जाने के बावजूद भारतीय *संविधान* अब भी हिंदू राष्ट्र की स्थापना के मार्ग में सबसे बड़े अवरोध के रूप में खड़ा है। भारतीय जनता पार्टी अभी भले ही *संविधान* पर सीधे हमला न करती हो; लेकिन उसकी बुनियाद को कमज़ोर करने का काम वह लगातार कर रही है। उसकी यह मान्यता है कि भारत हिंदुओं

की मातृभूमि है और शेष सभी चाहे मुसलमान हों या ईसाई, वे 'विदेशी' हैं। इसलिए उनकी देशभक्ति संदिग्ध है। उन्हें नागरिकता के वे अधिकार नहीं मिल सकते जो हिंदुओं को प्राप्त होने चाहिए। यह सोच उनकी राजनीति का आधारभूत सिद्धांत है, जो आरएसएस की स्थापना के समय से ही उसका मार्गदर्शक रहा है। उसके इसी विश्वास का नतीजा है कि मोदी सरकार ने नागरिकता क़ानून में संशोधन कर उसे पहली बार धर्म से जोड़ दिया है। जहां तक सामाजिक व्यवस्था का प्रश्न है, आरएसएस अपनी स्थापना के समय से ही ब्राह्मणवादी वर्णव्यवस्था में न सिर्फ़ विश्वास करता आया है वरन उसको हिंदू राष्ट्र की सामाजिक व्यवस्था का आधार बनाना चाहता है। दलित इस मनुवादी वर्णव्यवस्था के सबसे निचले पायदान पर हैं, लेकिन उनके वोट की भी ज़रूरत है इसलिए उनको अपने दायरे में लाने के लिए कई तरह की नौटंकी वे समय समय पर करते रहे हैं और उनका इस्तेमाल मुसलमानों के विरुद्ध दंगों में हथियार की तरह किया जाता रहा है। जबकि वास्तविकता में *संविधान* में दलितों, आदिवासियों को मिले संरक्षण को वे लगातार कमज़ोर करते जा रहे हैं और उन्हें फिर से अशिक्षा और असमानता के दलदल में धकेल रहे हैं।

आज लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता दोनों ही ख़तरे में हैं। अगर मौजूदा सांप्रदायिक फ़ासीवादी सरकार धर्मनिरपेक्ष और लोकतंत्र को ख़त्म करने के अभियान में लगातार आगे बढ़ती जाती है तो, न तो देश की एकता को बचाया जा सकता है और न ही देश प्रगति के पथ पर आगे बढ़ सकता है। आज देश आर्थिक रूप से आज़ादी के बाद के सबसे बड़े संकट से गुज़र रहा है। आर्थिक और सामाजिक विषमता इस हद बढ़ गयी है कि उसकी परिणति भयावह सामाजिक बिखराव और टकराव में हो रही है और जिसका बहाना बनाकर जनता के लोकतांत्रिक अधिकारों को छीना जा रहा है।

जनवादी लेखक संघ का दसवां राष्ट्रीय सम्मेलन न केवल लेखकों, कलाकारों और बुद्धिजीवियों का बल्कि लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता में यक़ीन करने वाले प्रत्येक भारतीय का आह्वान करता है कि वह लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता की रक्षा के लिए एकजुट हो और उन ताक़तों को हर मोर्चे पर परास्त करने के लिए आगे आये जो हमारे देश की एकता और अखंडता को नष्ट करना चाहती हैं, जो सांस्कृतिक बहुलता और बहुराष्ट्रीयता के हमारे देश के विशिष्ट चरित्र का ख़ात्मा कर रही हैं और जिनका मक़सद हमारे *संविधान* की आत्मा को नष्ट करना भी है।

बुलडोज़र नीति के ख़िलाफ़ प्रस्ताव

2014 में जब से केंद्र में मोदी सरकार आयी है, वह जनता के विरोध करने के अधिकार को जिस तरह से कुचल रही है, वह भारतीय *संविधान* के प्रावधानों का न केवल सरासर उल्लंघन है बल्कि क़ानून-व्यवस्था के नाम पर प्रशासन को अपराधी घोषित करने और सज़ा देने की ज़िम्मेदारी सौंप दी गयी है। केंद्र के इस रवैये से प्रोत्साहित होकर कई राज्यों की मौजूदा भारतीय जनता पार्टी सरकारें अपने विरोधियों को कुचलने के लिए हर तरह के अवैधानिक और अलोकतांत्रिक हथकंडे अपना रही हैं। विरोध की हल्की सी कोशिश को भी राजद्रोह की तरह देखा जाता है और ऐसी कोशिश करने वाले को

बिना किसी अपराध के जेलों में ठूंस दिया जाता है। गोरखपुर के डॉ. कफ़ील ख़ान को केवल इसलिए जेल में डाल दिया गया क्योंकि उन्होंने सरकारी अस्पतालों में प्रशासनिक लापरवाही से बेमौत मारे गये बच्चों की सच्चाई को जनता के सामने रखा था। केरल के पत्रकार सिद्दीक़ कप्पन को केवल इसलिए लगभग दो साल तक जेल में रहना पड़ा क्योंकि वे हाथरस में हुई उस भयावह घटना की रिपोर्टिंग करने जा रहे थे, जिसमें एक दलित लड़की को पहले बलात्कार का शिकार बनाया गया था और बाद में उसकी हत्या कर दी गयी थी। उसकी लाश को यू पी पुलिस ने आधी रात को मिट्टी का तेल डालकर जला दिया था।

उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, असम और कुछ दूसरे राज्यों में सीएए के विरुद्ध प्रदर्शन करने वाले मुसलमानों को न केवल जेलों में ठूंसा गया बल्कि उन पर भारी जुर्माना लगाया गया, यहां तक कि बहुतों के घर बुलडोज़रों से ज़मींदोज कर दिये गये। भारत का *संविधान* पुलिस और प्रशासन को यह अधिकार नहीं देता कि वह ही लोगों को अपराधी घोषित करे और फिर उन्हें मनमानी सज़ा भी दे। यह पूरी तरह से असंवैधानिक और अलोकतांत्रिक है। दुर्भाग्यपूर्ण यह है कि पुलिस और प्रशासन की इन कार्रवाइयों को रोकने में न्यायपालिका भी पूरी तरह से असफल रही है; बल्कि कहीं-कहीं तो उन्होंने प्रशासन और पुलिस की इन कार्रवाइयों पर मोहर भी लगायी है। इसका सबसे भयावह पहलू यह है कि पुलिस और प्रशासन की इस मनमानी का शिकार आमतौर पर मुसलमान ही हुए हैं। यहां तक कि ऐसे लोगों के मकानों पर भी बुलडोज़र चलाये गये हैं जो किसी भी तरह के विरोध प्रदर्शन में शामिल नहीं थे। उनका कसूर केवल यह था कि वे मुसलमान थे और उन्हें केवल मुसलमान होने की सज़ा दी गयी थी। असम में तो क़ानूनी प्रक्रिया को धता बताते हुए कई मदरसों पर बुलडोज़र चला दिये गये।

जनवादी लेखक संघ का दसवां राष्ट्रीय सम्मेलन मौजूदा भाजपा सरकारों की इस असंवैधानिक, अलोकतांत्रिक और अपराधिक कार्रवाइयों की घोर निंदा करता है और यह मांग करता है कि इन कार्रवाइयों को तुरंत रोका जाये, प्रशासन जनता को आश्वस्त करे कि भविष्य में ऐसी कोई कार्रवाई पुलिस और प्रशासन की तरफ़ से नहीं की जायेगी। न्यायपालिका से भी अनुरोध है कि जहां भी इस तरह की कार्रवाई हुई है उसमें शामिल अधिकारियों के विरुद्ध मुक़दमे चलाये जायें। जिन लोगों के घर, दुकानें, मदरसे या अन्य स्थल तोड़े गये हैं उनको सरकार की तरफ़ से तत्काल हरजाना दिलवाया जाये।

समाज में बढ़ती हिंसा के ख़िलाफ़ प्रस्ताव

वर्ग समाजों में हिंसा वर्गीय वर्चस्व बनाये रखने का एक परंपरागत हथियार रही है। समाज चाहे सामंतवादी हो या पूंजीवादी, शासक वर्ग हमेशा से दलितों, वंचितों और कमज़ोर तबक़ों को हिंसा के द्वारा उन पर शासन करता रहा है, यह हिंसा चाहे भौतिक रूप में हो या वैचारिक रूप में। भारत का मौजूदा समाज कहने को धर्मनिरपेक्ष और लोकतांत्रिक है और भारत का हर नागरिक चाहे उसका धर्म, उसकी जाति, उसकी नस्ल, उसका जेंडर जो भी हो, *संविधान* के समक्ष बराबर है और सभी को समान

अधिकार हासिल हैं। इसके बावजूद यह सच्चाई है कि समाज में जो परंपरागत असमानता व्याप्त है, उसे आज़ादी के 75 साल बाद भी ख़त्म करना तो दूर कम भी नहीं किया जा सका है।

सामंती-मनुवादी परंपराओं वाला भारतीय समाज पहले से हिंसाग्रस्त रहा है। इस हिंसा में इधर अभूतपूर्व बढ़ोतरी हुई है। हिंदुत्ववादी ताक़तों के हाथ में सत्ता आने के बाद जातिवादी हिंसा में ज़बर्दस्त उछाल आया है, साथ ही सांप्रदायिक हिंसा भी बेतहाशा बढ़ी है। दरअसल, मोदी सरकार के सत्ता में आने ने सवर्णपरस्त मनुवादियों और सांप्रदायिक तत्वों को यह विश्वास दिलाया है कि सत्ता अब उनके हाथ में है और दलितों, आदिवासियों और धार्मिक अल्पसंख्यकों को *संविधान* के अंतर्गत जो संरक्षण प्राप्त है अब उसे ख़त्म किया जा सकता है। उनके इस आत्मविश्वास का ही नतीजा है कि दलित दूल्हों की घोड़ी चढ़ने पर पिटाई आम बात हो गयी है। मंदिर की सीढ़ियां लांघने पर, किसी 'ऊंची जाति' वाले को देखकर उठ-खड़े न होने पर, ख़ास रिंग टोन पर, गरबा देखने पर, साफ़-सुथरे कपड़े पहनने पर, स्कूलों में सवर्णों के लिए रखे गये पानी के घड़े को छूने पर दलितों को आज भी सार्वजनिक रूप से दंडित किया जा सकता है। राजस्थान में एक स्कूली दलित बच्चे को केवल पीट-पीटकर इसलिए मार डाला गया कि उसने सवर्ण अध्यापकों के लिए रखे घड़े को छू लिया था। आज भी हर रोज़ हज़ारों दलित गटर साफ़ करने के लिए ज़हरीली गैसों वाले गटर में उतरने के लिए मजबूर हैं और हर साल सैकड़ों की संख्या में दलित यह काम करते हुए मारे जाते हैं। यह भी हिंसा ही है जहां सरकारें ग़ैरज़रूरी कामों पर अरबों रुपये ख़र्च करती हैं लेकिन उन आधुनिक यंत्रों को नहीं ख़रीदतीं जिनसे दलितों को गटरों में न उतरना पड़े और अपनी जान न देनी पड़े।

यह विडंबना नहीं तो और क्या है कि आज़ादी के 75 साल बाद भी दलित समुदाय के न जाने कितने लोग, कारण-अकारण, हिंसा के शिकार होते रहे हैं और अब भी हो रहे हैं। इधर दलित स्त्रियों का अपहरण करना, उनके साथ सामूहिक बलात्कार करना और उसके बाद उन्हें मारकर पेड़ पर लटका देना आम बात होती जा रही है। बलात्कार की घटनाएं थम नहीं रही हैं। न केवल दलित बल्कि आदिवासी, मुसलमान और ग़रीब स्त्रियां भी बलात्कार और हिंसा का शिकार हो रही हैं। लेकिन इसमें नयी बात यह देखने में आ रही है कि बलात्कार और हत्या करने वाले शासन के द्वारा संरक्षित हो रहे हैं। हाथरस का मामला हो या कठुआ का, उन्नाव की घटना हो या इलाहाबाद की; लगभग हर जगह प्रशासनिक व्यवस्था और सत्तारूढ़ पार्टी हमलावरों-हत्यारों-बलात्कारियों को बचाने में मुस्तैद नज़र आती है। बीजेपी के मंत्री तक ऐसे तत्वों के जेल से छूट कर आने पर मालाओं से उनका भव्य स्वागत करते देखे गये हैं। केंद्र सरकार ने पिछले साल संसद में कहा था कि 2018-20 के मध्य दलितों पर अत्याचार के एक लाख चालीस हज़ार के क़रीब मामले दर्ज हुए थे। इनमें साठ हज़ार से अधिक केस अकेले उत्तर प्रदेश के थे।

इसी तरह मुसलमान युवकों को घर से उठा लेना, टार्चर करना और बेबुनियाद मामलों में फंसा देना इस दौरान पुलिस के लिए बहुत आसान हो गया है। पहले ये घटनाएं केवल कश्मीर तक महदूद थीं, लेकिन अब देश के हर कोने में, हर राज्य में घट रही हैं। अधिकतर मामलों में पुलिस सत्तारूढ़ पार्टी के निर्देशानुसार काम करती है। धर्मोन्मादी भीड़ द्वारा लिंचिंग के अनेक मामले घटित हुए हैं, हो रहे हैं। यहां भी पुलिस को पक्षपाती बना दिया गया है और न्यायतंत्र को निष्क्रिय-सा

कर दिया गया है। दिल्ली दंगे के दौरान हमने देखा कि दंगा भड़काने वाले छुट्टा घूमते रहे और अमन-चैन की मांग करने वाले जेलों में ठूंस दिये गये। आठ वर्षों के हिंदुत्ववादी शासन में पिछले दो-तीन वर्ष बुलडोज़री हिंसा के उभार के लिए जाने जायेंगे। ग़रीबों, मुस्लिमों, सरकार की ज़ुल्म-ज़्यादतियों के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने वालों के आशियाने इधर उजाड़े गये हैं, लगातार उजाड़े जा रहे हैं। ऐसा लगता ही नहीं कि देश में क़ानून का शासन है। सच्चाई तो यह है कि जिन पर जनता के हर तबक़े की सुरक्षा का दायित्व है, वे भी हिंसा के इस तांडव में शामिल हैं। कार्यपालिका हो या न्यायपालिका, ऐसा प्रतीत होता है कि सबकी बाग़डोर हिंदुत्ववादी शासकों के हाथ में है। स्थितियां इस हद तक ख़राब हैं कि केवल दलित, आदिवासी और धार्मिक अल्पसंख्यक ही नहीं, अब घरों और परिवारों में भी हिंसा में बढ़ोतरी हुई है। कोरोना काल की विभीषिका के दौरान जब ग़रीबों और मध्यवर्ग के लोगों को पूरी तरह से भगवान के भरोसे छोड़ दिया गया था और जब विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार भारत में चालीस लाख लोग इलाज के अभाव में मारे गये थे, उस दहशत और हताशा के माहौल में घरेलू हिंसा में भी बढ़ोतरी हुई और जिसके शिकार सबसे ज़्यादा बच्चे, स्त्रियां और बुज़ुर्ग हुए हैं।

जनवादी लेखक संघ का दसवां राष्ट्रीय सम्मलेन हिंसा के इस उन्मादी महा-उभार की कठोरतम शब्दों में भर्त्सना करता है और बेहतर मानवोचित शांति व्यवस्था बहाल किये जाने की मांग करते हुए हिंदुत्ववादी ताक़तों को निर्णायक शिकस्त देने का संकल्प व्यक्त करता है।

अभिव्यक्ति की आज़ादी के पक्ष में प्रस्ताव

पिछले आठ सालों में हमारे देश में अभिव्यक्ति की आज़ादी पर हमले जिस गति से बढ़े हैं, वह अभूतपूर्व है। केंद्र तथा अनेक राज्यों में सांप्रदायिक फ़ासीवादियों के सत्तारूढ़ होने के साथ ही भारतीय *संविधान* द्वारा सुनिश्चित किये गये इस नागरिक अधिकार पर ग्रहण लग गया है। *संविधान* के अनुच्छेद 19 (1) (a) में दिये गये अभिव्यक्ति के अधिकार को अनुच्छेद 19 (2) में जिस तरह के युक्तियुक्त प्रतिबंधों द्वारा मर्यादित किये जाने की छूट सरकार को दी गयी है, उसकी मनमानी व्याख्याएं करते हुए इस निज़ाम ने अभिव्यक्ति के अधिकार को, बिना किसी सरकारी घोषणा के, लगभग स्थगित कर दिया है। चिंताजनक यह भी है कि मामला इन मनमानी व्याख्याओं तक ही सीमित नहीं है। इस अधिकार पर गहराता संकट कहीं हिंदुत्ववादी संगठनों की राज्य के संरक्षण में चलने वाली गुंडागर्दी के रूप में है, कहीं थोक के भाव यूएपीए और राजद्रोह के आरोपों के तहत होने वाली गिरफ़्तारियों के रूप में है, कहीं प्रेस और सोशल मीडिया के पर कतरने के लिए बनाये गये क़ानूनों और लिये गये प्रशासनिक फ़ैसलों के रूप में है, तो कहीं पेगासस जैसे स्पाईवेयर से होने वाली निगरानी के रूप में, जिसके इस्तेमाल को लेकर सर्वोच्च न्यायालय के हलफ़नामे में भारत सरकार न हां कहने को राज़ी है, न ना। बहुत सचेत रूप से हालात ऐसे बनाये जा रहे हैं जिसमें लोग अपनी हिफ़ाज़त की ख़ातिर कुछ भी खुलकर कहने से परहेज करें। 2018 के एक मामूली-से ट्वीट को लेकर *आल्ट न्यूज़* के संस्थापकों में से एक मुहम्मद ज़ुबैर की हाल में हुई गिरफ़्तारी इसका सबसे ताज़ा उदाहरण है। *आल्ट न्यूज़* ने जिस तरह कई मामलों

में सरकारी ग़लतबयानियों और हिंदुत्ववादी झूठों का पर्दाफ़ाश किया था, उसका बदला लेने और उन्हें सबक़ सिखाने के लिए मुहम्मद ज़ुबैर के ट्वीट को बहाना बनाया गया। और यह तो सिर्फ़ एक उदाहरण है। ऐसे उदाहरण असंख्य हैं जो केंद्र तथा राज्यों की भाजपा सरकारों के इरादों को बेनक़ाब करते हैं और उन्हें संदेह का लाभ देने की कोई गुंजाइश नहीं छोड़ते। सच्चाई तो यह है कि देश को ऐसे निगरानी राज्य में तब्दील किया जा रहा है जहां अभिव्यक्ति का अधिकार ही ख़तरे में नहीं है बल्कि उनकी निजता भी ख़तरे में है।

यह महज़ संयोग नहीं है कि *न्यूज़क्लिक* जैसे न्यूज़ पोर्टल पर प्रवर्त्तन निदेशालय और आयकर विभाग की ओर से छापे मारे जाते हैं। पत्रकारों और कलाकारों को अपनी बात कहने से रोका जा रहा है। कुणाल कामरा और दूसरे कई स्टैंडअप कॉमेडी करने वाले कलाकारों को अपने कार्यक्रम करने से ज़बरन रोका जा रहा है। मध्य प्रदेश में एक कलाकार को तो इस आशंका से जेल में डाल दिया गया था कि वह जो प्रोग्राम प्रस्तुत करने वाला है उससे देश में अशांति फैल सकती है। एनडीटीवी जो काफ़ी हद तक वस्तुपरक और पक्षपात रहित रिपोर्टिंग करता रहा है, उसे तिकड़म द्वारा ख़रीदे जाने की कोशिशें की गयी हैं। ऐसे पत्रकार जो ख़तरा उठाकर भी अपने पेशे के प्रति ईमानदार रहे हैं और बिना डरे मौजूदा सरकार की जनविरोधी नीतियों की आलोचना करते रहे हैं उनमें से कइयों को अपनी नौकरियों से हाथ धोना पड़ा है। रवीश कुमार जैसे पत्रकारों के पीछे तो भाजपा के मीडिया सेल की ट्रोल सेना को लगा दिया जाता है जो गालियां देने से लेकर धमकियां देने का काम करती है । रवीश कुमार के बारे में तरह-तरह की अफ़वाहें फैलायी जाती हैं ताकि उनकी सार्वजनिक छवि को धूमिल किया जा सके। यहां यह भी कहने की ज़रूरत है कि रवीश अकेले ऐसे पत्रकार नहीं है जिन्हें निशाना बनाया गया है। करण थापर, बरखा दत्त, अभिसार शर्मा, अजित अंजुम, उर्मिलेश, भाषा सिंह और दूसरे कई पत्रकारों का नाम लिया जा सकता है जिनको लगातार डराया धमकाया जाता है।

अभिव्यक्ति की आज़ादी का जो सबसे ख़तरनाक पहलू है, वह यह है कि मीडिया के एक बहुत बड़े हिस्से को मौजूदा हिंदुत्ववादी राजसत्ता का पिछलग्गू बना दिया गया है। यह काम अचानक नहीं हुआ है बल्कि पिछले लगभग दो दशकों से मीडिया के विभिन्न चैनलों का स्वामित्व उन धन्नासेठों के हाथों में पहुंच गया है जिनका हिंदुत्ववादी संगठनों के साथ नापाक गठजोड़ है। इन चैनलों से निष्पक्ष और वस्तुपरक पत्रकारिता की उम्मीद करना तो दिवास्वप्न ही है, बल्कि ये चैनल मौजूदा राजसत्ता के सांप्रदायिक और फ़ासीवादी एजेंडे को लागू करने के मंच बन गये हैं। इन चैनलों में काम करने वाले पत्रकार, पत्रकार की तरह नहीं बल्कि भाजपा और संघ परिवार के कार्यकर्ता की तरह काम करते हैं। मौजूदा सत्ता की गोद में बैठा यह मीडिया उचित ही गोदी मीडिया कहलाता है। एक पत्रकार से जिस ईमानदारी और निष्पक्षता की उम्मीद की जाती है, उससे इन पत्रकारों का कोई लेना-देना नहीं है। झूठ इनका बहुत बड़ा हथियार है और जब इनके झूठ का पर्दाफ़ाश होता है तब भी उनके विरुद्ध कोई कार्रवाई नहीं होती क्योंकि उन्हें मौजूदा सरकार का समर्थन और संरक्षण दोनों हासिल हैं।

अभिव्यक्ति की आज़ादी का प्रश्न केवल पत्रकारिता और मीडिया से ही जुड़ा नहीं है। सिनेमा और टेलीविज़न को भी अभिव्यक्ति के दमन का शिकार होना पड़ता है। भारतीय सिनेमा की, विशेष रूप से हिंदी सिनेमा की परंपरा धर्मनिरपेक्षता और मिलीजुली संस्कृति को प्रोत्साहित करने की रही है, अब उस पर भी दबाव डाला जा रहा है कि वहां केवल ऐसी ही फ़िल्में बनें जो हिंदुत्ववादी नज़रिये का

प्रत्यक्ष या परोक्ष समर्थन करती हों। पिछले आठ साल में ऐसी कई फ़िल्में बनी हैं जिनमें इतिहास का विकृतीकरण और सांप्रदायीकरण देखा जा सकता है। यही नहीं, उन सब फ़िल्मकारों और कलाकारों को भाजपा के मीडिया सेल की ट्रोल सेना द्वारा ट्रोल किया जाता है जिन्होंने कभी भाजपा की या मोदी सरकार की नीतियों की आलोचना की हो। यहां भी उनके निशाने पर मुस्लिम कलाकार सबसे आगे हैं। यह ट्रोल सेना समय-समय पर फ़िल्मों, फ़िल्मकारों और कलाकारों के बायकाट का आह्वान करती है। इसने सिनेमा उद्योग में ऐसा भय पैदा कर दिया है कि वे किसी पटकथा को फ़िल्म बनाने के लिए स्वीकृत कराने से पहले उन्हें वकीलों को दिखाना बेहतर समझते हैं ताकि बाद में उनकी फ़िल्म बायकाट का शिकार न हो और सेंसर बोर्ड से भी आसानी से पास हो जाये। यही नहीं जो कलाकार मौजूदा सरकार के जनविरोधी क़दमों के विरुद्ध आवाज़ उठाते हैं तो फ़िल्म निर्माताओं पर दबाव डाला जाता है कि उन्हें काम न दिया जाये। यह स्थिति बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण है और फ़िल्म कलाकारों की अभिव्यक्ति की आज़ादी को नियंत्रित करने और सिनेमा उद्योग को पूरी तरह से अपने चंगुल में लेने की एक बड़ी मुहिम का हिस्सा है।

जनवादी लेखक संघ का दसवां राष्ट्रीय सम्मेलन *संविधान* में प्रदत्त अभिव्यक्ति की आज़ादी पर भाजपा सरकार द्वारा किये जा रहे चौतरफ़ा हमले की कड़े शब्दों में निंदा करता है और मांग करता है कि वह अपनी कारगुज़ारियों से बाज़ आये। हम लेखकों, कलाकारों, पत्रकारों, फ़िल्मकारों और बुद्धिजीवियों का आह्वान करते हैं कि अभिव्यक्ति की आज़ादी पर हो रहे हमले के विरुद्ध एकजुट हों और बिना किसी भय के इसके लिए संघर्ष करने के लिए आगे आयें।

निजीकरण के ख़िलाफ़ प्रस्ताव

1947 में जब भारत आज़ाद हुआ तब देश में व्याप्त ग़रीबी, भुखमरी और हर तरफ़ व्याप्त विषमता को देखकर विकास के पूंजीवादी मार्ग को अपनाते हुए भी कई ऐसे क़दम उठाये गये थे जिससे कि ग़रीबी और भुखमरी में कुछ कमी आ सके और विषमता को भी जिस हद तक संभव हो, कम किया जा सके। आरंभिक सरकारों ने इसे अपना दायित्व मानते हुए उत्पादन के बहुत से क्षेत्रों को निजी हाथों में सौंपने के बजाय उन्हें अपने हाथों में रखा जिसे निजी क्षेत्र के विरुद्ध सार्वजनिक क्षेत्र नाम दिया गया। ख़ासतौर पर आधारभूत संरचना वाले कारख़ाने सरकार ने ख़ुद स्थापित किये ताकि विकास की सुदृढ़ आधारशिला रखी जा सके। इसके साथ ही उत्पादन के उन क्षेत्रों को जिनमें बड़ी पूंजी की आवश्यकता नहीं होती उन्हें मध्यम, लघु और कुटीर उद्योगों के लिए सुरक्षित रखा गया ताकि घरेलू और कुटीर उद्योगों में लगे लोगों को अपने व्यवसाय से वंचित न होना पड़े और वे व्यापक स्तर पर रोज़गार भी उपलब्ध करा सकें। कुछ ख़ास क्षेत्रों में विशेष रूप से आधुनिकतम प्रौद्योगिकी वाले क्षेत्रों में विदेशी निवेश को भी आमंत्रित किया गया। लेकिन उन्हें हर क्षेत्र में निवेश की अनुमति नहीं दी गयी। इसी तरह आरंभिक सरकारों ने शिक्षा, स्वास्थ्य और नागरिक सेवाओं के क्षेत्र में भी सार्वजनिक निवेश को बढ़ावा दिया। इन सब क़दमों का ही नतीजा था कि आज़ादी के लगभग तीन-चार दशकों में देश के

पब्लिक सेक्टर ने सबसे अधिक रोज़गार मुहैया कराये, उनमें आरक्षण भी लागू हुआ। भले ही पंचवर्षीय योजनाओं के साथ समाज पूंजीवादी विकास के रास्ते पर चल रहा था, फिर भी एक कल्याणकारी राज्य की परिकल्पना काम कर रही थी। इसीलिए धीमी गति से ही सही, देश में हर क्षेत्र में विकास दिखायी दे रहा था। सामाजिक तानाबाना भी इतना तनावपूर्ण नहीं था जैसा आज दिखायी दे रहा है।

पूंजीवादी विकास के संकटग्रस्त होने पर अंतर्राष्ट्रीय पूंजी के संरक्षक साम्राज्यवादी देशों के दबाव में नवउदारीकरण और भूमंडलीकरण का मार्ग 1991 में हमारे यहां भी अपनाया गया। उसी दबाव के चलते लोक कल्याणकारी नीतियों से मुंह मोड़ना शुरू हुआ। निजीकरण, उदारीकरण और भूमंडलीकरण के मार्ग पर चलते हुए सरकारों ने सार्वजनिक क्षेत्र में पूंजी लगाने से हाथ खींचना शुरू कर दिया। यही नहीं, आज़ादी के चार दशकों में जो उद्योग सार्वजनिक क्षेत्र में लगाये गये थे, उन्हें निजी हाथों में सौंपा जाने लगा। पहले की तुलना में विदेशी पूंजी को भी बढ़ावा दिया गया। इस काम की शुरुआत 1991 की कांग्रेस सरकार ने कर दी थी। लेकिन उस समय तक उसकी गति धीमी रही। बाद में अटल बिहारी वाजपेयी सरकार के समय तो विनिवेश का एक अलग मंत्रालय ही स्थापित कर दिया गया। निजीकरण और उदारीकरण के प्रबल समर्थक मनमोहन सिंह के प्रधानमंत्रित्वकाल में यह प्रक्रिया जारी रही हालांकि कुछ हद तक सार्वजनिक क्षेत्र में भी सरकार ने निवेश किये। लेकिन नरेंद्र मोदी के सत्ता में आने के बाद जिस अंधाधुंध ढंग से विनिवेश किया जा रहा है और बहुराष्ट्रीय कंपनियों और निजी क्षेत्र के लिए हर क्षेत्र को खोला जा रहा है, उन्हें प्रोत्साहित किया जा रहा है, वह अभूतपूर्व है। न केवल उत्पादन के क्षेत्रों में, बल्कि रक्षा, शिक्षा, स्वास्थ्य और नागरिक सेवा के क्षेत्र में भी विदेशी और देशी निजी उद्योगों को बढ़ावा दिया जा रहा है। देश की जनता की गाढ़ी कमाई से बने पब्लिक सेक्टर अब हर रोज़ बड़े कारपोरेट घरानों को मिट्टी के मोल बेचे जा रहे हैं, इस काम में सबसे अधिक तेज़ी दिखायी दे रही है।

अब वित्तीय पूंजी का वर्चस्व है, विदेशी निवेश शेयर बाज़ार के अलावा उत्पादन के क्षेत्रों में बहुत कम आ रहा है। चाहे पूंजी देशी हो या विदेशी वह उन क्षेत्रों में ही निवेश करने के लिए तैयार होती है जिनमें मुनाफ़े की उम्मीद हो। देशी विदेशी निजी उद्योग बैंकों से कर्ज़ लेते हैं और उसे बाद में एन पी ए बना कर हड़प कर जाते हैं। आज बैंकों के पंद्रह लाख करोड़ रुपये से ज़्यादा का कर्ज़ बट्टे खाते में डाला जा चुका है जिनके लौटने की बिल्कुल भी उम्मीद नहीं है। यहां स्वास्थ्य सेवाओं का उदाहरण भी लिया जा सकता है जिसमें निजी क्षेत्र को पिछले तीन दशकों में ज़बर्दस्त बढ़ावा दिया जाता रहा है। लेकिन ये निजी अस्पताल अमीर, मध्यवर्ग और विदेशी रोगियों के लिए ही सेवाएं उपलब्ध कराते हैं क्योंकि वहां इलाज कराना सामान्य मध्यवर्ग और ग़रीब के लिए भी नामुमकिन है। कोरोना के दूसरे उभार के दौरान लाखों की संख्या में लोग इसीलिए मारे गये क्योंकि निजी अस्पतालों में इलाज कराना हरेक के लिए मुमकिन नहीं था और ख़स्ताहाल सरकारी अस्पताल मरीज़ों की संख्या देखते हुए बहुत कम थे। चूंकि निजी क्षेत्र का उद्देश्य केवल मुनाफ़ा कमाना होता है इसलिए वह उन्हीं क्षेत्रों में पूंजी लगाता है जिनमें अधिकतम मुनाफ़ा मिल सके, न कि उन क्षेत्रों में जिसकी जनता को ज़रूरत है। यही नहीं, निजी क्षेत्र के उद्योग यंत्रीकरण और ऑटोमेशन पर बल देते हैं जिससे रोज़गार में भी कमी आती है और जब मंदी का दौर आता है तो मज़दूरों की छंटनी कर देते हैं। निजीकरण का

नतीजा अंतत: ग़रीब और मध्यवर्गीय जनता को भुगतना पड़ता है। भूमंडलीकरण के इन तीन दशकों ने भारत को ही नहीं, दुनिया के विकसित और विकासशील हर पूंजीवादी देश को गहरे आर्थिक संकट में धकेल दिया। भूमंडलीकरण के दौर की इन विनाशकारी नीतियों से अगर हम पीछा नहीं छुड़ाते हैं तो वह दिन दूर नहीं है जब हम भी वैसी ही आर्थिक बर्बादी की ओर बढ़ जायेंगे जैसी बर्बादी श्रीलंका और पाकिस्तान में देख रहे हैं।

जनवादी लेखक संघ का यह दसवां राष्ट्रीय सम्मेलन देश के मौजूदा आर्थिक संकट पर गहरी चिंता व्यक्त करता है जो पिछले तीन दशकों से चल रही निजीकरण और उदारीकरण की नीतियों का दुष्परिणाम है और जिसके नतीजतन देश की ग़रीब जनता को भयावह स्थितियों का सामना करना पड़ रहा है। भुखमरी, बेरोज़गारी और बदहाली के मामले में आज हम अफ़्रीका के उन देशों से भी बदतर हालत में हैं जिनके पास संसाधनों की कमी है। विडंबना यह है कि इन नीतियों से यहां के इज़ारेदारों की संपत्ति दिन दुनी रात चौगुनी बढ़ रही है। यह महज़ संयोग नहीं है कि नरेंद्र मोदी के मित्र अंबानी और अडानी की संपत्ति में बेतहाशा वृद्धि हुई है जो राजसत्ता के सहयोग और समर्थन के बिना मुमकिन नहीं थी। आज जैसी भयावह विषमता हमारे देश में व्याप्त है वह आज़ादी के सात दशकों में कभी नहीं रही। इस राष्ट्रीय सम्मेलन का मानना है कि इन स्थितियों से हम तभी उबर सकते हैं जब जनता एकजुट होकर उन ताक़तों के ख़िलाफ़ खड़ी हो जिनकी निजीकरण और उदारीकरण की नीतियों ने देश को बदहाली में पहुंचा दिया है और अगर उन्हें नहीं रोका गया तो आर्थिक बदहाली में हमारा देश भी बुरी तरह फंस जायेगा।

बेरोज़गारी और महंगाई के ख़िलाफ़ प्रस्ताव

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने 2014 के चुनावों से पहले जनता से वादा किया था कि वे हर साल दो करोड़ रोज़गार उपलब्ध करायेंगे। आज आठ साल बाद भी दो करोड़ रोज़गार उपलब्ध कराना तो बहुत दूर की बात है, देश में बेरोज़गारी पिछले 45 साल में सबसे ज़्यादा है। 'सेंटर फ़ॉर मोनिटरिंग इंडियन इकॉनोमी' के अनुसार अगस्त 2022 में बेरोज़गारी की दर बढ़कर 8.3 फ़ीसद हो गयी है। जुलाई के महीने में बेरोज़गारी दर 6.8 फ़ीसद थी। लेकिन एक महीने में ही बेरोज़गार लोगों की तादाद में बीस लाख लोगों की बढ़ोतरी हो गयी। इस तरह बेरोज़गारी दर 6.8 से बढ़कर 8.3 प्रतिशत हो गयी। बेरोज़गारी शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में बढ़ी है। शहरी क्षेत्र में बेरोज़गारी बढ़कर 9 प्रतिशत और ग्रामीण क्षेत्र में बढ़कर 7.7 प्रतिशत हो गयी है।

2014 में बेरोज़गारी आंकड़ा 5.4% था। 'सेंटर फ़ॉर मॉनिटरिंग इंडियन इकोनामी' का आंकड़ा बताता है कि जनवरी 2016 तक बेरोज़गारी दर 8.72% पर उछल गयी। आंकड़े यह भी बताते हैं कि भारत की श्रम शक्ति भागीदारी दर 2016 में 47% से गिरकर 40% हो गयी। 15 वर्ष और उससे अधिक आयु के कामकाजी लाखों युवाओं ने श्रम बाज़ार छोड़ दिया, उन्होंने रोज़गार की तलाश तक बंद कर दी क्योंकि किसी भी तरह का रोज़गार मिलने की उम्मीद वे गंवा चुके हैं। यह सरकार नये रोज़गार पैदा करने में पूरी तरह असफल रही है। सरकार निजीकरण की जिस मुहिम को ज़ोर-शोर से चला रही है और जितने बड़े पैमाने पर विनिवेशीकरण किया जा रहा है, उसके रहते यह स्वाभाविक है

कि सरकारी नौकरियों में भारी कमी आये। यही नहीं उन क्षेत्रों में भी सरकार की दिलचस्पी रोज़गार को कम करने की है जिनका फ़िलहाल विनिवेश नहीं होने वाला है। इसी का नतीजा है कि केंद्र सरकार के ही आठ लाख से अधिक पद ख़ाली पड़े हैं और जिनको भरने की कोई कोशिश भी नहीं की जा रही है। सरकार यह भी कर रही है कि जो पद अब तक स्थायी थे, उन्हें अस्थायी या कैज़ुअल में बदल दिया जाये ताकि सरकार को पेंशन, ग्रेचुअटी और महंगाई और चिकित्सा भत्ता न देना पड़े। सरकार की इन नीतियों का ही परिणाम है कि अब सेना की भर्ती को भी अस्थायी बना दिया गया है। अब साधारण सैनिकों की भर्ती सेना में केवल चार साल के लिए होगी और चार साल बाद केवल एक चौथाई सैनिकों को ही आगे स्थायी किया जायेगा। युवकों द्वारा सरकार की इस नीति का विरोध किया जाना स्वाभाविक है। सेना ही नहीं, ऐसे और भी बहुत से क्षेत्र हैं जिन्हें सरकार या तो निजी क्षेत्र को सौंप रही हैं या उनकी भर्तियों में कटौती कर रही है। बेरोज़गारी का इस तरह बढ़ते जाना आगे आने वाले दिनों में भयावह सामाजिक तनावों को जन्म देगा।

बेरोज़गारी बढ़ने और पिछले दो-तीन सालों में वेतन और मज़दूरी में गिरावट आने की वजह से लोगों की वास्तविक आय में कमी आयी है जबकि मोदी सरकार के सत्ता में आने के बाद से लगातार महंगाई में बढ़ोतरी होती गयी है। इसने लोगों के जीवन स्तर में भी भारी गिरावट ला दी है। महंगाई की सबसे ज़्यादा मार ग़रीबों और मध्यवर्ग पर पड़ रही है क्योंकि जहां एक ओर उनकी आय में कमी आयी है तो दूसरी ओर खाने-पीने की चीज़ें लगातार महंगी होती गयी है। पेट्रोलियम पदार्थों की क़ीमतों में लगातार बढ़ोतरी का प्रभाव हर चीज़ की क़ीमत पर पड़ता है। पेट्रोलियम पदार्थों के दाम बढ़ना अब रोज़ की बात है। पहले एक एक रुपये की बढ़ोतरी पर जनता में आक्रोश दिखायी देता था लेकिन अब हर रोज़ दाम बढ़ने पर भी जनता मूक दर्शक बनी देखती रहती है। खाद्य तेलों और दालों में बढ़ोतरी ने इन चीज़ों को ग़रीबों की पहुंच से बाहर कर दिया है। मोदी सरकार गर्व से बताती है कि वह अस्सी करोड़ लोगों में अनाज मुफ़्त में बांट रही है। लेकिन यह आंकड़ा ही बताता है कि देश की आधे से अधिक आबादी सरकारी मदद पर निर्भर है। यदि उन लोगों को यह मदद भी न मिले तो वे भुखमरी के शिकार हो जायेंगे। ग़रीब लोगों को रोज़गार उपलब्ध कराने के लिए मनमोहन सिंह सरकार के समय शुरू किये गये 'मनरेगा' को मोदी सरकार ने लगभग ठप कर दिया है जबकि कोरोना काल में भी और उसके बाद भी इस योजना को और बड़े पैमाने पर चलाने की ज़रूरत थी। कई जगह उस योजना को रोक दिया गया है और जहां यह योजना चल भी रही है, वहां उन मज़दूरों को समय पर मज़दूरी भी नहीं मिल रही।

जनवादी लेखक संघ का दसवां राष्ट्रीय सम्मेलन बेरोज़गारी और महंगाई की इस विकट स्थिति के प्रति गहरी चिंता व्यक्त करता है और सरकार से मांग करता है कि रोज़गार बढ़ाने और महंगाई कम करने के लिए तत्काल क़दम उठाये जायें। ख़ासतौर पर उन सब क़दमों को तत्काल रोका जाये जिससे रोज़गार में कमी आती हो और महंगाई बढ़ती हो। सरकार को इस बात को समझना चाहिए कि लोगों के जीवन को सुरक्षित रखना और उन्हें एक सुखी, स्वस्थ और शांतिपूर्ण जीवन उपलब्ध कराना सरकार का दायित्व है और यह काम तभी हो सकता है जब वह लोगों को न केवल रोज़गार उपलब्ध कराये बल्कि किसी भी क्षेत्र में काम करने वाले कामगारों के न्यूनतम वेतन को सुनिश्चित करे।

उर्दू की हिफ़ाज़त और फ़रोग़ के लिए

भारतीय *संविधान* के आठवें अनुच्छेद में जिन 22 भाषाओं को भारतीय राज्य की राष्ट्रभाषा के रूप में दर्ज किया गया है, उनमें उर्दू भी एक है। यह सही है कि हिंदी और उर्दू को आज़ादी से पहले और बाद में भी सांप्रदायिक नज़रिया रखने वाले लोगों ने हिंदुओं और मुसलमानों की भाषा की तरह बना दिया और दोनों को सांप्रदायिक राजनीति का मोहरा बनाया। जबकि सच्चाई यह है कि उर्दू भी उतनी ही भारतीय भाषा है जितनी हिंदी या वे सभी भाषाएं जिनका उल्लेख आठवें अनुच्छेद में किया गया है। उर्दू का जन्म भी इसी भारतीय भूमि पर हुआ है और यह उन सभी की भाषा है जिनके घरों में आज भी इसका व्यवहार होता है। यह नहीं भूला जाना चाहिए कि उर्दू अदब को बुलंदियों पर पहुंचाने में हिंदुओं और मुसलमानों का वैसा ही योगदान है जैसा हिंदी को बुलंदियों पर पहुंचाने में इन दोनों समुदायों का है। आज भी उर्दू बोलने और जानने वाले दिल्ली, उत्तर प्रदेश, बिहार और दूसरे कई राज्यों में भारी तादाद में रहते हैं और जिनकी यह मातृभाषा भी है। लेकिन विडंबना यह है कि आज़ादी के बाद से सांप्रदायिक राजनीति ने उर्दू को उसके स्वाभाविक हक़ से वंचित कर दिया। यह भुला दिया गया कि उर्दू ने जंगे आज़ादी में एक शानदार भूमिका निभायी थी। यह विडंबना ही है कि 1948 में कई राज्यों में सरकारी स्कूलों में उसकी पढ़ाई बंद करा दी गयी। इस सौतेले व्यवहार की वजह से जनवादी लेखक संघ ने यह मान्यता पेश की कि 'उर्दू की रक्षा और विकास का सवाल इस देश में जनवाद की रक्षा और विकास' से जुड़ा हुआ है। इसलिए सभी लोकतांत्रिक और देशप्रेमी नागरिकों का यह ऐतिहासिक दायित्व है कि उर्दू के साथ किसी तरह की नाइंसाफ़ी न होने दी जाये।

जनवादी लेखक संघ जो उर्दू और हिंदी लेखकों का मिलाजुला संगठन है, अपनी स्थापना के समय से ही यह मांग करता रहा है कि उर्दू को उसका उचित संवैधानिक हक़ दिया जाये। न केवल भाषा को बल्कि उसकी लिपि को भी। जिन राज्यों में इस भाषा को दूसरी और तीसरी भाषा का दर्जा हासिल है वहां सरकारी कामकाज में उर्दू में भी कामकाज करने, सरकारी पत्र-व्यवहार में उर्दू के उपयोग पर अमल हो और सरकार द्वारा जारी होने वाले विज्ञापनों, विज्ञप्तियों को उर्दू में भी जारी किया जाये।

हालांकि उर्दू का पठन-पाठन बहुत से विश्वविद्यालयों में परंपरागत रूप से हो रहा है; लेकिन प्राइमरी से लेकर विश्वविद्यालय तक की शिक्षा में उर्दू न केवल एक विषय के रूप में बल्कि माध्यम के रूप में भी इस्तेमाल करने का उन स्कूलों और कालेजों में भी समुचित प्रबंध किया जाना चाहिए जहां यह प्रबंध अभी तक नहीं किया गया है ताकि जो विद्यार्थी उर्दू माध्यम से पढ़ना चाहें वे पढ़ सकें और उर्दू में शिक्षा आगे भी जारी रख सकें। लेकिन देखा यह गया है कि इन 75 सालों में उर्दू का इस्तेमाल सरकारी महकमों और शिक्षा के क्षेत्र में लगातार कम होता गया है। यही नहीं, जहां उर्दू शिक्षकों के पद हैं, रिक्त होने पर उन्हें वापस नहीं भरा जाता है। सरकारी महकमों में उर्दू कामकाज को प्रोत्साहित करने

के लिए उर्दू अनुवादकों की नियुक्ति की ज़रूरत है, लेकिन इस काम को कभी गंभीरता से अमली जामा नहीं पहनाया गया। इस तरह उर्दू में कामकाज और शिक्षण को लगातार हतोत्साहित किया जाता है। मौजूदा सरकार के सत्ता में आने के बाद से उर्दू के प्रति विरोध और नफ़रत का भाव और अधिक बढ़ा है। यही नहीं, संघ परिवार से जुड़े कई कथित विद्वान समय-समय पर इस बात की मांग भी करते हैं कि हिंदी में से वे सभी शब्द निकाल बाहर किये जायें जो अरबी-फ़ारसी आदि परंपरा से आये हैं। ये कथित ज्ञानी लोग नहीं जानते कि ऐसी कोशिश से हिंदी की स्वाभाविकता नष्ट हो जायेगी और उसे दरिद्र बनायेगी। ऐसी बनावटी हिंदी सरकारी अनुवादों में आज भी देखी जा सकती है जिसे हिंदी भले ही कहा जा रहा हो, लेकिन यह वह हिंदी नहीं है जो आमजन की बोलचाल की भाषा है।

जनवादी लेखक संघ का दसवां राष्ट्रीय सम्मेलन यह मांग करता है कि उर्दू को उसका समुचित हक़ दिया जाये और सरकारी कार्यालयों में और रोज़गार और शिक्षा के क्षेत्र में उर्दू में कामकाज को मुमकिन बनाने के लिए ज़रूरी क़दम उठाये जायें। यही नहीं, जनवादी लेखक संघ हिंदुत्ववादियों की इस कोशिश की घोर निंदा करता है जो हिंदी में से आमफ़हम उर्दू के अल्फ़ाज़ निकाल कर उसमें तत्सम शब्दावली भरकर भाषा की जीवंतता मिटाने पर तुले हैं।

जयपुर हाई कोर्ट के परिसर से मनु की मूर्ति हटाने के लिए

भारतीय *संविधान* के अनुसार भारत एक धर्मनिरपेक्ष गणराज्य है। हमारा संविधान मनुवादी सामंती व्यवस्था का और *मनुसंहिता* में दिये निर्देशों का निषेध करके सारे नागरिकों को समानता, स्वतंत्रता और परस्पर भाईचारे जैसे नये लोकतांत्रिक मूल्यों को शब्द और कर्म में इस गण्रराज्य में लागू करने के लिए प्रेरित करता है। बाबा साहब आंबेडकर ने प्रतीकात्मक तौर पर दलित समाज के आक्रोश को व्यक्त करते हुए *मनुसंहिता* को जलाया था क्योंकि उसमें शूद्र कहे जाने वाले दलित जनों के प्रति अमानवीय व्यवहार करने के अनेक निर्देश अंकित हैं और ब्राह्मण कहे जाने वाले नागरिकों को बार बार पूजनीय और देवता रूप में गौरवान्वित किया गया है। यही नहीं, उसमें महिलाओं को भी स्वतंत्रता का अधिकारी नहीं माना गया है। दलितों और महिलाओं के प्रति अमानवीय व्यवहार को बढ़ावा देने वाले मनु ने जो वर्णव्यवस्था ईजाद की उसमें निहित इंसानी बिरादरी में ऊंचनीच का भाव आज के लोकतांत्रिक समाज में भला किसे स्वीकार हो सकता है, इस सामंती वर्णव्यवस्था के रचयिता मनु की मूर्ति को *संविधान* अनुशासित भारतीय न्यायपालिका के परिसर में स्थापित करना ही अक्षम्य अपराध माना जाना चाहिए था, आधुनिक न्याय व्यवस्था की किसी भी संस्था में किसी भी धर्म की आचार संहिता के प्रतीक नहीं ही दिखने चाहिए, परिसर किसी एक धर्म के नागरिकों की संपत्ति नहीं है, सरकारी ख़ज़ाने से किसी एक धर्म के प्रतीक चिह्नों पर धन ख़र्च करना भी अपराध ही माना जाना चाहिए।

इसलिए जनवादी लेखक संघ का दसवां राष्ट्रीय सम्मेलन यह मांग करता है कि जयपुर हाईकोर्ट के परिसर से मनु की मूर्ति तुरंत हटायी जानी चाहिए। इस पर सुप्रीम कोर्ट को भी संज्ञान लेकर उन लोगों पर कार्रवाई करनी चाहिए जिन्होंने भारतीय *संविधान* की अवमानना करते हुए इस मूर्ति पर सरकारी धन लगाया, जो उन लोगों से वसूल किया जाना चाहिए।

जयपुर सम्मेलन (23-25 सितंबर 2022) में निर्वाचित पदाधिकारी / केंद्रीय कार्यकारिणी / केंद्रीय परिषद्

संरक्षक मंडल : रमेश कुंतल मेघ | मुरली मनोहर प्रसाद सिंह | शेखर जोशी | कांतिमोहन 'सोज़' | वक़ार सिद्दीक़ी | आलोक धन्वा

अध्यक्ष : असग़र वजाहत

कार्यकारी अध्यक्ष : चंचल चौहान | राजेश जोशी

उपाध्यक्ष : इब्बार रब्बी | नमिता सिंह | रामप्रकाश त्रिपाठी | विष्णु नागर | डॉ. मृणाल | जीवन सिंह | प्रह्लाद चंद्र दास | (रिक्त)... | (रिक्त)... | ...(रिक्त)...

महासचिव : संजीव कुमार

संयुक्त महासचिव : बजरंग बिहारी तिवारी | नलिन रंजन सिंह | संदीप मील

सचिव : रेखा अवस्थी | शुभा | मनमोहन | अली इमाम ख़ान | नीरज सिंह | राजीव गुप्त | हरियश राय | मनोज कुलकर्णी | बली सिंह | ख़ालिद अशरफ़ | सुधीर सिंह | विनीताभ

कोषाध्यक्ष : जवरीमल्ल पारख

केंद्रीय कार्यकारिणी : असद ज़ैदी | राजेंद्र शर्मा | राकेश तिवारी | प्रेम तिवारी | विभास वर्मा | महेंद्र बैनीवाल | नरेंद्र जैन | वीरेंद्र जैन | नीलेश रघुवंशी | नंद भारद्वाज | शाह ज़फ़र इमाम | अनंत कुमार सिंह | गोपाल प्रसाद | एम ज़ेड ख़ान | शैलेश कुमार सिंह | हृदयेश मयंक | सलाम बिन रज़्ज़ाक | हरीश चंद्र पांडेय | कपूर वासनिक | नासिर अहमद सिकंदर | कुमार सत्येंद्र | टेकचंद | मणि मोहन मेहता | ज्ञान प्रकाश चौबे | प्रदीप सक्सेना | प्रदीप मिश्र | राघवेंद्र रावत | भरत मीणा | शीन हयात | अशोक कुमार | सुबोध मोरे | ...(कार्यकारिणी में हिमाचल प्रदेश, हरियाणा और पश्चिम बंगाल के सदस्य वहां के राज्य सम्मेलन के बाद शामिल किये जायेंगे। राष्ट्रीय सम्मेलन में पश्चिम बंगाल से कोई प्रतिनिधित्व न होने के कारण हर श्रेणी में उनके स्थान रिक्त रखे गये हैं। सबको मिलाकर कुल 16 स्थान रिक्त)...

केंद्रीय परिषद् :

(दिल्ली) निर्मला गर्ग | देवेंद्र चौबे | हीरालाल नागर | बलवंत कौर | अतुल सिंह | रानी कुमारी | संदीप यादव | सत्यनारायण | द्वारका प्रसाद | श्याम सुशील | अनुराधा गुप्ता | मज़कूर आलम | सत्यप्रकाश सिंह | हिरण्य हिमकर

(मध्य प्रदेश) रतन चौहान | अनवारे इस्लाम | रामकिशोर मेहता | बालेंदु परसाई | सुरेंद्र रघुवंशी | वसंत सकरगाए | रजनी रमण शर्मा | जी के सक्सेना | अरुण वर्मा | प्रियंका कवीश्वर | राजा अवस्थी |

संध्या कुलकर्णी
(राजस्थान) रामस्वरूप किसान | सूर्यप्रकाश जीनगर | हंसराज चौधरी | नागेंद्र कुमावत | नीलाभ पंडित | देवकांता | प्रो. मोहम्मद हुसैन | मनीष सिनसिनवार
(हरियाणा) हरपाल | जयपाल | ओमप्रकाश करुणेश | सिद्दीक़ अहमद … (दो स्थान रिक्त)
(बिहार) अलख देव प्रसाद अचल | कृष्ण चंद्र चौधरी | श्रीराम तिवारी | नंदकिशोर नंदन | घमंडी राम | मार्कंडेय | रामललित सिंह | विजय कुमार सिंह | सीमा संगसार | राजेश कुमार | अलका मिश्र | डॉ. रामदेव महतो | अनिल कुमार | बालरूप शर्मा | सुनील कुमार प्रिय | शंभू शरण सत्यार्थी | युगल किशोर दुबे | डॉ. चंद्रशेखर चौरसिया
(झारखण्ड) शैलेंद्र अस्थाना | अशोक शुभदर्शी | अनवर शमीम | धनंजय प्रसाद | ललन तिवारी | ज्योत्सना अस्थाना | उदय प्रताप हयात | वरुण प्रभात | अपराजिता मिश्र | मनोज चौरसिया
(प. बंगाल) ... बारह स्थान रिक्त
(महाराष्ट्र) मुख़्तार ख़ान | संजय भिसे ... (सात स्थान रिक्त)
(उत्तर प्रदेश) केशव तिवारी | विशाल श्रीवास्तव | मुनेश त्यागी | वेद प्रकाश | डॉ. महेंद्र प्रताप सिंह | विनोद कुमार दत्ता | धर्मराज | अनीता मिश्र | शालिनी सिंह | सीमा सिंह | आशिक़ अली | सोनी पांडेय | महेश आलोक | रमेश पंडित | बसंत त्रिपाठी | विवेक निराला | जयप्रकाश मल्ल | सुनील कटियार ... (तीन स्थान रिक्त)
(छत्तीसगढ़) परदेशी राम वर्मा ... (एक स्थान रिक्त)
(हिमाचल प्रदेश) ... पांच स्थान रिक्त
(केंद्र) तीन स्थान रिक्त

सम्मेलन की प्रेस रिपोर्ट

जनवादी लेखक संघ का त्रिदिवसीय दसवां राष्ट्रीय सम्मेलन, जयपुर के इंदिरा गांधी पंचायती-राज भवन के सभागार में, दिनांक 23 से 25 दिसंबर के बीच संपन्न हुआ। सम्मेलन में विभिन्न राज्यों से जनवादी लेखक संघ के लगभग 250 सदस्य एकत्र हुए थे। 23 मार्च को उद्घाटन सत्र और विचार सत्र का आयोजन किया गया था और ये दोनों सत्र खुले सत्र थे। इस दिन भारी संख्या में जयपुर के लेखक, कलाकार और बुद्धिजीवी भी सम्मेलन में सम्मिलित हुए।

सम्मेलन के उद्घाटन सत्र का आरंभ जयपुर के गांधीवादी सामाजिक कार्यकर्ता श्री सवाई सिंह के स्वागत भाषण से हुआ। उन्होंने बाहर से आये लेखक-अतिथियों का स्वागत किया और राजस्थान की महान संस्कृति से भी सबको परिचित कराया। सम्मेलन का उद्घाटन वक्तव्य प्रसिद्ध पत्रकार और कृषि संकट के गंभीर अध्येता, पी साईनाथ ने दिया। उन्होंने कहा कि मौजूदा निज़ाम किसान, मज़दूर और निम्नमध्य वर्ग का विरोधी है और उसकी सारी नीतियां, इज़ारेदार पूंजीपतियों और साम्राज्यवादी विदेशी निगमों को फ़ायदा पहुंचाने वाली हैं। अपनी जनविरोधी कारगुज़ारियों को छुपाने के लिए, यह मनुवादी-सांप्रदायिक विचारधारा का पोषण कर रही है। लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता और सामाजिक न्याय की जिस विचारधारा के लिए आज़ादी की लड़ाई के दौरान संघर्ष किया गया था और इन मूल्यों को हमारे *संविधान* का आधार बनाया गया था, मौजूदा निज़ाम इनका ख़ात्मा कर मनुवादी-सांप्रदायिक फ़ासीवाद की विचारधारा, 'हिंदुत्व' को थोपने की कोशिश कर रहा है। इसके विरुद्ध संघर्ष का काम केवल हिंदी से नहीं हो सकता, इसके लिए हमें उन बोलियों तक जाना होगा, जिन्हें हिंदी प्रदेशों की मेहनतकश जानती-समझती है।

पी साईनाथ ने यह सवाल भी उठाया कि लेखकों का हमारे समय के प्रवाहों से क्या और किस तरह का संबंध है। उन्होंने मौजूदा समय के संकटों में कृषि संकट, उदारीकरण, निजीकरण, वैश्वीकरण, असमानता और पलायन आदि को गिनाते हुए, इस बात पर अफ़सोस जताया कि लेखकों और पत्रकारों के लेखन में इन विषयों को आमतौर पर नज़रअंदाज किया गया है। इनको जितना महत्व देना चाहिए, उतना महत्व नहीं दिया गया है। उन्हें इस बात पर भी विचार करना चाहिए कि ऐसा क्यों हुआ। उन्होंने आंकड़े देकर देश की गंभीर स्थिति पर विस्तार से प्रकाश डाला। उन्होंने आज़ादी के 'अमृत महोत्सव' की चर्चा करते हुए कहा कि इस अभियान में आज़ादी के नायकों, मूल्यों और आदर्शों को नज़रअंदाज़ कर दिया गया है। जिस संगठन का आज़ादी के आंदोलन में कोई योगदान नहीं था, उसी के कार्यकर्ता और मौजूदा प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी को ही, हर जगह हाइलाइट किया जा रहा है। 'हर घर तिरंगा' अभियान में भी राष्ट्रीय भावना और तिरंगे के पीछे छिपे दर्शन की भी, पूरी तरह से उपेक्षा की गयी है।

सम्मेलन के मुख्य अतिथि और प्रख्यात विचारक और सामाजिक कार्यकर्ता, राम पुनियानी ने इस अवसर पर बोलते हुए कहा कि चारों ओर दिखायी दे रहे मौजूदा संकट के लिए, वर्तमान राजनीति ज़िम्मेदार है। इस राजनीति का निर्धारक संघ परिवार है, जिसके इशारे पर पिछले तीस-चालीस सालों में धर्म के आवरण में राजनीति नंगा नाच कर रही है तथा विभिन्न समुदायों में नफ़रत और उन्माद पैदा करके धर्म के आधार पर ध्रुवीकरण करने का खेल, खेल रही है। लेकिन, इस राजनीति का धर्म के नैतिक मूल्यों से कोई लेना-देना नहीं है। ऐसे समय में जब जनता के बीच फूट डालने की कोशिश की जा रही है लेखकों को लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता, *संविधान* और आज़ादी की लड़ाई की विरासत को बचाने के काम को, अपने लेखन का आधार बनाना होगा।

उद्घाटन सत्र में ही सफ़ाई कर्मचारियों के मानवाधिकारों के लिए संघर्ष करने वाले सामाजिक कार्यकर्ता और विचारक बैजवाड़ा विल्सन ने देश की मौजूदा स्थिति पर प्रकाश डालते हुए विशेष रूप से सफ़ाई कार्यों में लगे दलितों के जीवन की मुश्किलों का उल्लेख करते हुए लेखकों का आह्वान किया कि वे समाज के सबसे पददलित वर्ग के उत्पीडऩ को भी अपने लेखन का हिस्सा बनायें और जनता को जागरूक करें।

उद्घाटन सत्र के बाद आयोजित विचार सत्र में नंदिता नारायण, आनंद कुमार, रतन लाल और चंचल चौहान ने अपने विचार व्यक्त किये। सहयोगी और बिरादाराना संगठनों में 'जन-संस्कृति मंच' की ओर से हिमांशु पांड्या, 'दलित लेखक संघ' की ओर से हीरालाल राजस्थानी और 'प्रगतिशील लेखक संघ' की ओर से प्रेमचंद गांधी ने वक्तव्य दिये और इस बात को रेखांकित किया कि इस दौर में सभी लेखक संगठनों को मिल-जुलकर काम करने की ज़रूरत है। इस दोनों सत्रों की अध्यक्षता असग़र वजाहत, मुरली मनोहर प्रसाद सिंह और जीवन सिंह के अध्यक्ष मंडल ने की।

उद्घाटन सत्र शुरू होने से पहले मौजूद लेखकों ने गांधी स्थल से सम्मेलन स्थल तक *संविधान* के प्रति अपनी आस्था व्यक्त करने के लिए मार्च किया, भारतीय *संविधान* का प्रिएंबल पढ़ा। जन नाट्य मंच, दिल्ली की ओर से 'तथागत' नाटक खेला गया और अंत में कवि सम्मेलन भी आयोजित किया गया, जिसका संचालन राघवेंद्र रावत ने किया।

सम्मेलन के संगठनात्मक सत्रों में महासचिव की ओर से केंद्र की विस्तृत रिपोर्ट संयुक्त महासचिव संजीव कुमार ने प्रस्तुत की और उस पर सभी राज्यों के प्रतिनिधियों ने अपने विचार रखे और साथ ही इन प्रतिनिधियों ने भी अपने-अपने राज्यों की पिछले सम्मेलन से इस सम्मेलन के बीच हुई गतिविधियों का संक्षिप्त लेखा-जोखा प्रस्तुत किया। सम्मेलन ने केंद्र की रिपोर्ट को करतल ध्वनि के साथ पारित किया।

संगठन सत्र के दौरान ही 'जयपुर घोषणा' हिंदी में राजीव गुप्ता ने और उर्दू में ख़ालिद अशरफ़ ने पेश की जिसमें मौजूदा हालात की गंभीरता और लेखकों और कलाकारों के एकजुट होने की ज़रूरत

को रेखांकित किया गया था। 'जयपुर घोषणा' पर कई सदस्यों ने अपने विचार प्रस्तुत किये और सुझाव भी दिये, जिन्हें शामिल करते हुए संचालन समिति द्वारा घोषणा को अंतिम रूप दिया जायेगा। प्रस्तावित संशोधनों के साथ 'जयपुर घोषणा' को भी सम्मेलन ने सर्वसम्मति से पारित किया।

संगठनात्मक सत्रों में ही इतिहास के सांप्रदायीकरण के ख़िलाफ़`, लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता की रक्षा के पक्ष में, शिक्षा के सांप्रदायीकरण और व्यावसायीकरण के ख़िलाफ़, निजीकरण के ख़िलाफ़, बुद्धजीवियों, पत्रकारों और सामाजिक कार्यकर्ताओं की रिहाई के पक्ष में, बुलडोजर नीति के ख़िलाफ़, महंगाई और बेरोज़गारी के ख़िलाफ़, जयपुर के उच्च न्यायालय परिसर में लगी मनु की मूर्ति हटाने के पक्ष में, समाज में बढ़ती हिंसा के ख़िलाफ़, उर्दू की हिफ़ाज़त और फ़रोग के पक्ष में और अभिव्यक्ति की आज़ादी के पक्ष में, कुल ग्यारह प्रस्ताव पारित किये गये। पिछले सम्मेलन से इस सम्मेलन के दौरान जो लेखक, कलाकार और बुद्धिजीवी हमारे बीच नहीं रहे और जिनमें से कइयों का देहावसान कोरोना के कारण हुआ, उन्हें दो मिनट का मौन रखकर श्रद्धांजलि दी गयी।

अंतिम सांगठनिक सत्र में नयी केंद्रीय परिषद का चुनाव किया गया। केंद्रीय परिषद ने बाद में नयी कार्यकारिणी और पदाधिकारी मंडल का चुनाव किया। इससे पहले जलेस *संविधान* में दो संशोधन प्रस्तुत किये गये जिन्हें सर्वसम्मति से स्वीकृति प्रदान की गयी। असग़र वजाहत को अध्यक्ष तथा चंचल चौहान व राजेश जोशी को, कार्यकारी अध्यक्ष चुना गया। संजीव कुमार, महासचिव और बजरंग बिहारी तिवारी, नलिन रंजन सिंह और संदीप मील, संयुक्त महासचिव चुने गये। इब्बार रब्बी, रामप्रकाश त्रिपाठी, नमिता सिंह, विष्णु नागर, मृणाल, जीवन सिंह और प्रहलादचंद्र दास, उपाध्यक्ष चुने गये और रेखा अवस्थी, शुभा, मनमोहन, अली इमाम ख़ान, नीरज सिंह, मनोज कुलकर्णी, बलीसिंह, सुधीर सिंह, विनीताभ, हरियश राय, राजीव गुप्ता, ख़ालिद अशरफ़, सचिव तथा जवरीमल्ल पारख, कोषाध्यक्ष चुने गये। रमेश कुंतल मेघ, शेखर जोशी, मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, कांतिमोहन 'सोज़', वक़ार सिद्दीक़ी और आलोक धन्वा को, संरक्षक मंडल में ससम्मान शामिल किया गया है।

प्रस्तुति : राजीव गुप्ता/ संदीप मील

खंड : दो

प्रतिरोध : अभिव्यक्ति का वैविध्य

कुछ कविताएं

विष्णु नागर

आज

एक हफ़्ते बाद कुछ भी हो सकता है
काग़ज़ का जहाज़
अटलांटिक पार कर सकता है

लोहा अपनी पहचान खो सकता है
पानी का रंग और स्वाद बदल सकता है
मैं 71 की बजाय 17 का हो सकता हूं

बात आज और अभी की है
आग अभी लगी है
पानी अभी चाहिए

आज की रात ठंडी है
कंबल भी आज चाहिए
मेहनत आज की है
मज़दूरी आज चाहिए
एक हफ़्ते की बाद की बात गाली है
एक हफ़्ते बाद की बात
भूख के पक्ष में दलील है।

जो पता भूल चुके हैं

एक बुज़ुर्ग बाज़ार में हैं

भूल चुके हैं अपना पता
बीच बाज़ार में बैठे रो रहे हैं
लोग आते हैं, दया दिखाते हैं, भावुक होते हैं
कोई कोई पुलिस को फ़ोन करता है
नये आते हैं, पुराने चले जाते हैं

एक बच्चा आता है
उनकी उंगली पकड़ता है
अब दो हैं
पर पता नहीं है।
(मित्र यादवेंद्र की एक फ़ेसबुक पोस्ट से प्रेरित)

चोर की दाढ़ी

पहले के चोर बेवक़ूफ़ होते थे
दाढ़ी रखते थे
ऊपर से तिनके के उलझने की चिंता नहीं करते थे

अब के चोर क्लीनशेव्ड हैं
दाढ़ीवाले भी हैं
मगर तिनके में वो हिम्मत कहां
जो उनकी दाढ़ी तक पहुंच सके!

शिखर

धरती से देखो तो एक ही शिखर दीखता है
शिखर से दीखते हैं बहुत से शिखर-
विफलता के एक से एक ऊंचे शिखर।

ख़तरा

चांद खिला हुआ है
सरकार ख़तरे में है
गुलाब महक रहे हैं

सरकार ख़तरे में है
बच्चे खेल रहे हैं
सरकार ख़तरे में है

सरकार समझ रही है
इस बार वाक़ई वह ख़तरे में है।

शाश्वत

शाश्वत वे फूल हैं
जो सुबह खिले, शाम को मुरझा गये

शाश्वत वह धूल है
जिसने बिना भेदभाव
सबको अपने
पैरों के निशान बनाने दिये
बाद में आनेवालों को मिटाने दिये

शाश्वत वह झूठ है
जो युधिष्ठिर ने बोला

शाश्वत वह प्यास है
जो बुझती
और लगती है।

अब तो

अब तो हम विष्णु जी हैं, नागर जी हैं
विष्णु नागर जी हैं
आदरणीय हैं, सम्माननीय हैं
वरिष्ठ पत्रकार हैं, वरिष्ठ कवि हैं
और जी, मान लो, तो व्यंग्यकार हैं

पहले हम विष्णु थे, नागर थे,
बिस्निया थे, बिस्नू थे
मार खाते थे, लात खाते थे
मां की गाली दे
बुलाये जाते थे

पहले तू हुए, फिर तुम, फिर आप
स्वर्गीय होने के रास्ते में हैं।

अधम इंसान

मैं एक अधम इंसान
एक हज़ार करोड़ के मालिक
एक हज़ार से अधिक भारतीय बने
और मुझे उनसे ईर्ष्या तक नहीं हुई!

मो. 9810892198

पांच कविताएं

प्रतिभा कटियार

1
औरतें सपने देख रही हैं

खेतों की कटाई में, धान की रुपाई में
रिश्तों की तुरपाई में लगी औरतें सपने देख रही हैं

बच्चों को सुलाते हुए, उनका होमवर्क कराते हुए
गोल-गोल रोटी फुलाते हुए
औरतें सपने देख रही हैं

ऑफ़िस की भागमभाग में, प्रोजेक्ट बनाते हुए
बच्चों को पढ़ाते हुए, मीटिंगें निपटाते हुए
औरतें सपने देख रही हैं

घर के काम निपटाते हुए, पड़ोसन से बतियाते हुए
टिफ़िन पैक करते हुए
आटा लगे हाथ से आंचल को कमर में कोंचते हुए
औरतें सपने देख रही हैं

बेमेल ब्याह को निभाते हुए
शादी, मुंडन जनेऊ में शामिल होते
हैपी फ़ैमिली की सेल्फ़ी खिंचवाते हुए
आंखें मूंदकर संभोग के दर्द को सहते हुए
सुखी होने का नाटक करते हुए
औरतें गीली आंखों के भीतर सपने देख रही हैं

कि एक दिन वो अपने हिस्से के सपनों को जी लेंगी
एक दिन वो अपने लिए चाय बनायेंगी

अपने साथ बतियायेंगी
ख़ुद के साथ निकल जायेंगी बहुत दूर
जहां उनके आंसू और मुस्कान दोनों पर
नहीं होगी कोई जवाबदेही
बहुत आहिस्ता से जाना उनके क़रीब
चुपचाप बैठ जाना वहीं, बिना कुछ कहे
या ले लेना उनके हाथ का काम ताकि
औरतें सपने देखती रह सकें
और उनके सपनों की ख़ुशबू से महक उठे यह संसार

2

एक दिन

सोचा था एक दिन सोऊंगी देर तक
जागने के बाद भी अलसाती रहूंगी
सिरहाने रखी चाय ठंडी होती रहेगी
और गुनगुनी चादर में पूरे होने दूंगी ख़्वाब

सोचा था एक दिन जल्दी जागूंगी
उगते सूरज से आंखें मिलाऊंगी
ओस भरे बाग़ीचे में नंगे पांव टहलती रहूंगी
अख़बार में तसल्ली से ढूंढूंगी
कोई अच्छी ख़बर

सोचा था एक दिन फ़ुर्सत से लेटी रहूंगी धूप में
सीने पर पड़ी रहेगी प्रिय किताब और
सोचती रहूंगी तुम्हारे बारे में
कि तुम अगर मेरे बारे में सोचते होगे
तो कैसे लगते होगे

सोचा था एक रोज़ टूटी-फूटी इबारत में
लिखूंगी कच्चा-पक्का सा प्रेम पत्र
देर तक रोती रहूंगी उसे लिखकर

फिर बिना तुम्हें भेजे ही
लौट आऊंगी अपनी दुनिया में

सोचा था अधूरा पड़ा रियाज़ उठाऊंगी एक रोज़
इत्मिनान से साधूंगी न लगने वाले सुर
धूनी लगाकर बैठ जाऊंगी
तुम्हारी याद के आगे कि ज़रा कम आये वो
यूं हर वक़्त याद आना बुरी बात है

सोचा था एक रोज़ तुम्हारी पसंद के रंग पहनूंगी
इतराऊंगी आईने के सामने
कुछ मन का बनाऊंगी
कुछ रंग भरूंगी अधूरी कलाकृति में
पौधों को पानी देने के बहाने बतियाऊंगी उनसे

सोचा था एक रोज़ तसल्ली से दोस्तों से गप्पें लगाऊंगी
अरसे से न देखे गये मैसेज के जवाब दूंगी
कोई पसंद की फ़िल्म देखूंगी
पड़ोसन से उसका हाल पूछूंगी
बिल्ली के बच्चे के संग खेलूंगी

और हुआ यूं कि वो एक दिन मिला
तो घर की सफ़ाई,
कपड़ों और सामान की धराई
बड़ी, पापड़ मसालों को धूप दिखाने
बाज़ार से राशन, सब्ज़ी लाने उसे सहेजने
बल्ब बदलने
मेहमानों की मेज़बानी में बीत गया
मीर का *दीवान* रखा मुस्कुराता रहा
और मैं अधूरे सपने से बाहर निकल
फिरकी सी नाचती रही दिन भर

हुआ यूं कि छुट्टी का एक दिन
ढेर सारे अरमानों के साथ उगा और
ढेर सारे काम करते बीत गया

3

'अब ऐसा कुछ नहीं होता' का सच

क्या आपने अपनी नंगी पीठ पर खाये हैं
अपनी जाति के कारण पड़ने वाले चाबुक
क्या आपके बच्चे सोये हैं कई रातों तक
भूख से बिलबिलाते हुए
क्या आपकी पीढ़ियां गुज़री हैं उस दर्द से
जो सिर्फ़ झूठन पर जिंदगी गुज़ारने से जन्मता है
और उसे उन्हें उम्र भर सहना पड़ता है

क्या आपके कुल ख़ानदान में से कभी कोई उतरा है
गटर की सफ़ाई के लिए और गंवायी है जान
क्या अपने अस्तित्त्व को गाली की तरह
इस्तेमाल होने का स्वाद चखा है आपने
क्या आपको कहानियां लगती हैं
दलितों पर अत्याचार की घटनाएं

क्या आप समझते हैं कि दिन में एक बार
चावल का माड़ पीकर सोने वाले बच्चे
और सुविधाओं से घिरे आपके
शहजादे की परवरिश एक सी है
क्या सचमुच आपको कोई फ़र्क़ महसूस नहीं होता
भूखे पेट ढिबरी में पढ़ने
और भरपेट खाने और चार ट्यूशन से पढ़ने में
क्या आपकी नसें तनी हैं कभी
दलित स्त्रियों से बलात्कार की ख़बरों से
या मान लिया है आपने कि
उनका जन्म ही हुआ है इसके लिए
क्या आपको लगता है कि
'हमने तो नहीं देखी बराबरी' कहकर
समय और समाज की बड़ी हक़ीक़त को

झुठला सकते हैं आप
क्या आपको सचमुच नहीं पता कि

बिना सम्मान के पीढ़ी दर पीढ़ी
जीते जाना कितना पीड़ाजनक होता है

जाति के कारण कुएं के सामने
प्यास से दम तोड़ते लोगों के बारे में जानना
क्या आपको किसी काल्पनिक उपन्यास का
कोई पन्ना लगता है

क्या नहीं पसीजता आपका दिल
नन्हे के एक वक़्त के दूध की ख़ातिर
देह को बिछाने की पीड़ा सहती स्त्री के बारे में जानकर

तो देवियो और सज्जनो!
अपने गले की नसें टूटकर बिखर जाने की सीमा तक
चीखते हुए कहना चाहती हूं कि
आप मुग़ालतों की दुनिया में हैं
क्योंकि यह सब होता है आज भी, अब भी
यहीं कहीं आपके बहुत पास
न जाने कितनी सिसकियां होंगी
जो आपने सुनी नहीं
दृश्य जो आपने देखे नहीं

कृपया अपने मुग़ालतों की दुनिया से बाहर निकलिए
उतारिए कुछ देर को जाति की उच्चता की
वह आलीशान पोशाक जो जन्म के साथ ही
आपके लिए तमाम सुविधा समेत आपको पहना दी गयी है

कल्पना कीजिए न सिर्फ़ एक बार वह सब जीने की
जिसके होने को नकार रहे हैं आप
और अगर नहीं कर सकते ऐसा
तो कृपया बंद करिए फ़रमान देना
कि 'अब ऐसा कुछ नहीं होता'
क्योंकि होता तो अब भी सब कुछ ऐसा ही है
बल्कि कुछ ज्यादा ही शातिर ढंग से

4

अच्छा लगने का स्वाद

तुम्हारा पास होना
जैसे धरती पर छनक उठना
ख़्वाहिशों की पाजेब
रुनझुन रुनझुन रुनझुन रुनझुन
जिसकी धुन में गुम हों
हम तुम तुम हम

जैसे खिलना हज़ारों पीले गुलाब धरती पर
और वादी में उतरना एक ख़ूबसूरत धुन
जैसे तपती दोपहर को मिलना
बारिश की फुहार
बेचैन मन को मिलना चैन

जैसे सदियों से जागी आंखों को मिलना
भर मुट्ठी नींद
हरसिंगार के पेड़ का भर जाना फूलों से
अप्रैल के महीने में

जैसे बुलबुलों की उड़ान में शामिल होना शरारत
जैसे रास्तों में भटक जाना और
भटकते हुए खो जाना
अनजाने सुख के घने जंगल में
जैसे बंद आंखों से बरसना सुख की बदलियां
जैसे चखना स्वाद पहली बार
'अच्छा लगना' का.

वह कोई ख़्वाब नहीं था
आज एक नदी मुझसे मिलने आयी मेरे घर
फिर आया एक पूरा जंगल
आया जंगल तो आये परिंदे भी
फिर मैंने देखा खिड़की से झांक रहा था बादल

लिये ढेर सारी बारिश
खोली खिड़की तो आ गया बादल भी बारिश समेत

अलसाता इठलाता समंदर आया कुछ देर बाद

राग मल्हार आया तो साथ आया मारवा भी
मीर आये बाद में पहले फ़ैज़ और ग़ालिब आये
पीले लिबास में सजी मुस्कुराहटें आयीं आहिस्ता-आहिस्ता
रजनीगंधा आये तमाम
साथ अपने लाये सूरजमुखी
तुम आये तो आज इस घर में देखो न
चला आया क़ुदरत का समूचा कारोबार

इस धरती को ख़ूबसूरत बनाने का ख़्वाब जो रहता था इस घर में
ये सब आये उस ख़्वाब को बचाने की ख़ातिर
तुम आये तो आयी उम्मीद, शांति, प्यार
तुम आये तो आयी बहार

जब देख रही थी मैं इन सबको अपने घर में
आंखें खुली हुई थीं कि वह कोई ख़्वाब नहीं था
कि मेरी हथेलियां जब हों तुम्हारे हाथों में
ख़्वाब कोई नामुमकिन कहां रह जाता है.

5
नीला गुलमोहर और प्रेम

अभी-अभी डाकिया रख गया है एक पत्र देहरी पर
जिसके भीतर लहरा रहा है
आशाओं का संसार
जिसे छूते घबरा रही है लड़की
मुस्कुरा रही है दूर से देखकर ही

अभी-अभी अम्मा ने सांकल खोली है
तमाम नियम क़ायदों की

वो निकल गयी हैं घर से बहुत दूर
देर रात
उन्हें बाद मुद्दत सांस आयी हो जैसे

अभी-अभी ज़िंदगी की कुम्हलायी शाख़ पर
उम्मीद की कोंपलें फूटने की आहट हुई
प्रेमासिक्त कबूतर के जोड़े ने
देखा एक-दूसरे को
और मूंद ली हैं आंखें

अभी-अभी नन्हे ने किलक के उंगली बढ़ायी है
ग़ुस्से से भरे उस अजनबी की ओर
जिसकी आंखों में कुछ देर पहले
उतरा रही थी हिंसा अब उस अजनबी की आंख में
उतरा रही है एक नदी

अभी-अभी शाख़ से टूटकर गिरा है
नीला गुलमोहर
प्रेमी जोड़े के कंधे पर
रास्तों ने मुस्कुराकर कर देखा उन्हें
एक बदली घिर आयी है आसमान पर

अभी-अभी तुमने मेरी हथेलियों को चूमा है
और देखो धरती प्रेम से भर उठी है.

मो. 9456591379

चार कविताएं

नेहल शाह

1
रंग अपनी पसंद के

मैं सोचती रही
मुझे आज़ादी है चुनने की
रंग अपनी पसंद के
किंतु संभव न हुआ यह कभी।

बाहर की दुनिया के लिए
मैं भी एक रंग थी,
जो बहुत साफ़ न था।

मुझे मनाही थी
उन सपनों को देखने की
जिनका रंग हरा था

लाल मुझे उनके ज्योतिषी ने
पहनने से मना किया था
क्योंकि मेरा मंगल भारी था

उन्हें, पीला मुझ पर जंचता न था
काला अशुभ था
नीला केवल वे पहन सकते थे

सफ़ेद पहनने से
उन्हें दाग़ लगने का डर था
मेरी अस्मत पर

और उन्होंने भी सफ़ेदी
का जामा पहन रक्खा था,
भला मैं बराबरी कैसे करती!

वे कहते
गुलाबी बहुत नाज़ुक है मेरे लिए
और उसे पहनने की मेरी
उम्र जा चुकी है।

कत्थई रंग की
कई कहानियां थीं
उनके और मेरे बीच,
जिनके कथानक बहुत अच्छे नहीं थे
और एक दर्द जैसा जम गया था
कत्थई रंग का मेरी आंखों में

नारंगी बहुत प्रचलित था उनके बीच
मुझे रंग तो पसंद था
किंतु वे नहीं
सो, मैं पहन नहीं पाती

मैं बदरंग सी लेटी रहती
शाम के किसी छोर से
अपने बालों को गूंथ कर
एक बेरंग, फीका सा रिबन लगा कर

मैं पड़ी रहती
बैंगनी रंग की बेला में
(जहां मुझे परहेज़ था
दिन और रात के मिलन से)
स्याह रात का नक़ाब ओढ़,
अपने बिस्तर के कोने पर
किसी पलट कर रखी हुई
अधपढ़ी खुली किताब की तरह

वे मेरा नाम पुकारते
मैं सुनकर भी कोई प्रतिक्रिया न देती
क्योंकि मैं छोड़ चुकी थी उनका
हर एक रंग

2

'स्त्रियां चुप नहीं रह सकतीं कभी'

सड़क के एक ओर बने
एक बड़े घर के कमरे में
ख़ूबसूरत रंगी दीवारों और बंद खिड़कियों के बीच
रहती है एक बड़े आदमी की स्त्री

वह नहीं दिखायी देती अब
उस कमरे की दीवार पर टंगी
विदेशी मशहूर आर्टिस्ट की पैंटिंग में बनी
सुडौल न्यूड स्त्री जैसी

उसकी युवा अवस्था को
तेज़ी से पीछे छोड़ चुकी है
समय से कुछ तेज़ भागती
एक महंगी दीवार घड़ी

चिर युवा रहने की
उसकी आकांक्षा
ड्रेसिंग टेबल के आईने में साफ़
अटकी दिख रही

और बंधे दिख रहे हैं उसके पैर
वज़न तोलने के पैमाने से
जो घिसटता हुआ हमेशा उसके साथ चलता है
लेकिन दिखायी नहीं देता कहीं

सड़क के दूसरी ओर है एक झुग्गी बस्ती
जिसके कच्चे मकान की दीवार पर लगे एक विज्ञापन में
रहती है कुपोषित सी एक स्त्री
यह बताती हुई
कि देश की 15 से 49 वर्ष की आयु की
57 प्रतिशत स्त्रियां एनीमिया से जूझ रहीं

वह स्त्री दिखायी देती है
उन कमज़ोर दीवारों के अंधेरे झरोखों से
बाहर की दुनिया को झांकती हुई
वहां रह रही प्रत्येक स्त्री जैसी

उस घर के भीतर देखने से दिखती है कमी
ज़रूरत के सामान की, ज़मीन की,
दिखती है चकमक एक कांच की
होता है आभास किसी चेहरे के होने का
जो कांच में नहीं दिखायी देता कभी
और नहीं दिखायी देता कभी कांच में
उसका कमज़ोर शरीर,
रिक्त उदर, लगातार गिरता प्रसव
और खोखला अस्तित्व
जैसे फ़र्श पर लुढ़कती ख़ाली बोतल कोई

सड़क के बीच से देखने पर
तेज़ रफ़्तार गाड़ियों के पार
एक मल्टीस्टोरी बिल्डिंग के एक छोटे किराये के फ़्लैट में रहती है एक स्त्री

फ़्लैट दिखता है सामान से भरा लबालब इतना
कि अट सके केवल एक और आदमी
किंतु सिकोड़ लेती है वह स्वयं को इस तरह
कि किसी को जगह कम न पड़े कभी

उस घर की बनावट में
किचन और ड्राइंगरूम के बीच की जगह पर
टंगा है एक आईना

जिसके सामने से गुज़रते हुए
स्वयं को अनदेखा करते हुए
कई बार दिखती वह स्त्री

दिखती है वह उस आईने में
दिन में कई बार
अपने बेडरूम की अलमारी की दराज़ से
निकालते हुए एक डायरी
लिखते हुए उसमें कुछ ऐसा जो कविता नहीं

रात होते ही सो जाते हैं सब
जागता है आईना
दिखती है उसमें वह स्त्री
तलाशते प्रेम
पति की थकी ख़ाली आंखों में,
लुप्त हो जाने से
जो चीख रहा है
बनकर दर्द कमर का उसकी।

ये स्त्रियां लेकर चलती हैं
अपने साथ
अपने दुःख का शोर
जो रहता है इनके भीतर निरंतर
फ़ैक्टरी में चल रही मशीनों के
कोलाहल की तरह

और इस बीच पूरी कर ली है
एक कथाकार ने
अपनी कहानी की किताब
जिसका शिर्षक बन पड़ा है :
'स्त्रियां चुप नहीं रह सकतीं कभी'

3

यक़ीन है मुझे मैं नहीं

किसी ईश्वर की रचना मैं नहीं
ईश्वर महान हुआ करते हैं
निष्कलंक रचते हैं
यक़ीन है मुझे
मैं नहीं

ईश्वर का उपकार मुझ पर नहीं
ईश्वर अद्भुत हुआ करते हैं
चमत्कार करते हैं
यक़ीन है मुझे
मुझ पर नहीं

मैं हूं एक
कमतर मनुष्य
जिसका जन्म हुआ था
दो मनुष्यों के औसत प्रेम से
इसलिए भी मैं असाधारण नहीं

मुझ में
ऐसा कुछ भी नहीं
जिस पर कभी नाज़ करें वे
और उनके साथ उनका ईश्वर भी

अतः मैं
घोषित करती हूं
मुक्त स्वयं को सदा के लिए
ईश्वर की बनायी सत्ता और संसार से

यहां
ईश्वर के
बहीख़ाते में
मेरा कोई हिसाब नहीं

4

मैं रहना चाहती हूं तुम्हारे भीतर

मैं रहना चाहती हूं तुम्हारे भीतर भरपूर
पानी की तरह सहज
मैं होना चाहती हूं तुम्हारी संरचना का
सत्तर प्रतिशत हिस्सा
बहना चाहती हूं तुम्हारी रगों में बनकर तरलता
चमकना चाहती हूं तुम्हारी आंखों में उस वक़्त
जब प्रेम से लबालब भरा हो तुम्हारा मन

उस प्रेम की दृष्टि में
छलक जाना चाहती हूं तुम्हारी आंखों से
बहना चाहती हूं तुम्हारे होंठो के किनारों से लग कर
भिगो देना चाहती हूं तुम्हें और स्वयं को
गले के रास्ते तुम्हारे वक्ष तक पहुंचकर
लिपटकर तुम्हारे हृदय से
हो जाना चाहती हूं प्रेम से तर

मैं तुम में स्पर्श की तरह बहते हुए
छू लेना चाहती हूं तुम्हारी स्थिरता
एक एक अस्थि से गुज़रते हुए
मैं देखना चाहती हूं तुम्हारा मन
उस समय, जब बहुत क़रीब से महसूस कर रहे हो तुम अपना सबसे अज़ीज़ ग़म
देख रहे हो घायल होते अपनी संवेदना का चरम
चख रहे हो इस बेस्वाद दुनिया का कोई मर्म
ठीक उस वक़्त सुनी जाना चाहती हूं मैं तुम्हारे कानों में
बनकर एक आश्वस्त धुन

मो. 9424442993

प्रेम : तीन अक्स

लीमा टूटी

1

जब
उम्र के तेरहवें साल में,
पहली चिट्ठी लिखी थी प्रेम की,
तब सचमुच नहीं जानती थी मनकी
कि कई और लड़कियां भी
लिख रही हैं प्रेम पत्र उसके ही प्रेमी को।
और उसका प्रेमी कर रहा है वादे,
उनसे भी, जीवन भर साथ निभाने के।
उस तेरहवें साल में,
यह भी न समझ पायी 'मनकी'
कि क्यों दादा भौजी को अपने साथ शहर नहीं ले जाते?
और दादा का फ़ोन उस तरह कोई और
क्यों उठाती है?
समझ नहीं पायी मनकी भौजी की रोती आंखों का सच।
इस बात से भी शायद, अंजान ही रह जायेगी वह
कि अपनी एक आंख खोने के बाद अब मां,
बाबा को पीने से क्यों नहीं रोकती?
नव यौवन के इंद्रधनुषी संसार में गुम
मनकी व्यस्त है आजकल
सपने बुनने में, सुंदर दिखने में और 'प्रेम' में
सचमुच, अब तक कहां जान पायी है मनकी
दिखने के पीछे होने का सच।

2

तुम न कहना कभी
कि दुनिया की तमाम ख़ुशियां मेरे क़दमों पर रख दोगे,
न यह कहना कि मेरी पलकें ग़म से न भींगने दोगे कभी ,
न वादा करना कि मेरी हर तमन्ना पूरी करोगे
न भरोसा दिलाना कि मुझसे बढ़कर तुम्हारे लिए
और कुछ भी न होगा।
तुम ऐसा कुछ भी न कहना जिससे
प्रेम के अर्थ खो जायें कहीं।
सिर्फ़ तुम इतना करना
कि चाहना मुझे चुपचाप
जैसे परिंदे ने चाही होगी अपनी उड़ान
तुम संभाल लेना मुझे
जैसे बाबा ने संभाली होगी अब तक,
मेरे बचपन की कोई तस्वीर
तुम सुनना मुझे
जैसे हज़ारों गीतों में भाती है तुम्हें,
कोई एक ग़ज़ल
तुम पास आना मेरे
जैसे बच्चों की नींदों में आते हैं
निर्दोष निष्पाप सपने।
तुम चूम लेना मुझे, जैसे
पूरे दिन की मेहनत के बाद मज़दूर,
चूम लेता है हाथ में आयी मजूरी।
हां, चाहना मुझे तुम सिर्फ़ इतना
तुम्हारी थाली की रोटी में नमक हो जितना।

3

मैं चाहती हूं
सरहदें विलुप्त हो जायें और...
वहां उग आयें, हरे घास के मैदान

मैं चाहती हूं
सभी हथियार और बारूद
जंगलों, नदियों और फ़सलों में, तब्दील हो जायें
और इन्हें बनाने वाले कारख़ाने
चॉकलेट, बिस्किट, और रोटियां बनायें
मैं चाहती हूं, सैनिकों की वर्दियॉ हल्की, बहुत हल्की हो जायें
और उनकी बंदूकें गुलाबी रूमाल बन जायें
मैं चाहती हूं
सभी फ़ाइटर प्लेन और युद्धपोत खिलौने हो जायें और
बांट दिये जायें दुनिया के तमाम बच्चों में
हां, मैं सचमुच
बहुत चाहती हूं
कि युद्ध को मृत्युदंड दिया जाये।

मो. 9973065442/8340592167

दो कविताएं

विश्वासी एक्का

1

साझा सुख

तुम हल हो मैं फाल हूं
हमारे साथ साथ होने से खेत है
तुमने मुझे हल चलाने से रोका
यह अलग बात है

तुम छज्जा हो मैं दीवार हूं
हम दोनों के होने से घर है
तुमने मुझे छज्जे पर चढ़ने से रोका
यह अलग बात है

तुम खेत हो मैं धार धार बरसता पानी हूं
हम दोनों के होने से फ़सल है
मेरे हिस्से बस मुट्ठी भर धान आया
यह अलग बात है

तुम बांसुरीवादक हो मैं बांस हूं
हम दोनों से सुर सजा है
तुमने मुझे गाने से रोका
यह अलग बात है

तुम धान बोते हो मैं भात रांधती हूं
हम दोनों से तृप्ति है
मैं सबके खाने के बाद खाती हूं
यह अलग बात है

मैं पहाड़ों पर जाती हूं
सखियों संग खूब हंसती हूं
मैना के पीछे भागती हूं
हिरनी सी दौड़ती हूं
तितली सी उड़ती हूं
झरने सी इठलाती हूं
वर्जनाएं वहां भी मेरा पीछा करती हैं
पर मैं कभी हार नहीं मानूंगी
यह अलग बात है

2

घुमड़ती हवा

एक एक पेड़ से जंगल है
जंगल है तो हरियाली है
जंगल है तो आदिवासी हैं
आदिवासी हैं तो ही जंगल है

जंगल है तो जल है
जंगल है तो ही कल है
जल ने जीवन दिया
जल से ही प्रलय हुआ
नासमझी तो अपनी थी
नादानी तो अपनी है |

जंगल है तो मोर है
तीतर, बटेर, चकोर है
वर्षा होती घनघोर है
कहना थोड़ा समझना ज़्यादा
कि क्षीण होती हर दिन जीवन की डोर है

जंगल है तो आग है
आग है तो ही जीवन का स्वाद है

आग ने जीवन दिया
पाला पोसा बड़ा किया
उस आग से ही
किसी ने जंगल को जला दिया
धरती को बंजर बना दिया

कैसे कहूं वो कोई और है
यह कोई भूल भुलैया नहीं
न कोई गणित है
न व्यापार है
बस एक समझ है
सीधी सरल सी बात है
गाछ गाछ सी सांस है
पात पात संगीत है
धरती पर जीवन बचा रहे
सबसे ज़रूरी यही बात है

मो. 9340382843

दो कविताएं

नीलम

1

शीलता की चादर

तुम्हारी बंदिशें
अब न रोक पायेंगी
हमारे क़दम
तुम्हारे आक्षेप
अब न डरा पायेंगे हमें
हमारी शीलता की चादर
अब न ठहरा पायेगी हमें
तुम्हारे झूठे अफ़साने
अब न फंसा पायेंगे हमें
शुचिता के खोखले शब्द
अब हिला न पायेंगे
हमारे इरादे
न देंगे हम अग्नि परीक्षा
अब न लायेंगे हम
हर के प्राण
चाहे जितना आये तूफ़ान
उसे चीरकर
पत्थरों को भेद कर
अब नयी धारा
बनायेंगे हम
साहिलों से भी टकरा कर
अब नयी राह निकालेंगे हम
भिड़ जायेंगे तूफ़ानों से
अब रुख मोड़ देंगे उसका
पर पायेंगे अपनी मंज़िल
अब रोक न सकेंगी

तुम्हारी गढ़ी सभ्यता, संस्कृति और परंपरा
अपनी हिम्मत से
रच देंगे नया इतिहास
अब गढ़ेंगे नयी सभ्यता और संस्कृति
लांघ जायेंगे
अब तुम्हारी बनायी सारी मर्यादा
रचेंगे एक नया संसार
चाहे आये
अब कितना बवंडर
रोक सके न
अब हमारी दिशा
नयी उम्मीद
नये फ़सानों के साथ
मानवता का रचेंगे नया संसार

2

तेरा पहला चुंबन

मुझे याद है
तेरा वो सिसकना
मुझे याद है
तेरे अरमानों का मर जाना
मुझे याद है
हर पल तेरा टूटना
मुझे याद है
फिर से तेरा जुड़ना
मुझे याद है
तेरा बदलना
मुझे याद है
तेरा पहला वो चुंबन
मुझे याद है
बांहों में तेरा जकड़ना
मुझे याद है
एक दूसरे में खो जाना

हां मुझे याद है
अब भी
तेरी वो गर्माहट
तेरी वो मुस्कान
तेरी वो प्यार भरी नज़रें
तेरा धीरे धीरे
मेरे आगोश में आना
हां मुझे अब भी याद है
तेरे में डूब जाना
जो अब भी मुझे सहलाता है
जीने की राह दिखाता है
हां सब याद है मुझे

मो. 7042232176

तीन कविताएं

दिव्या श्री

1

आत्मकथा

बायीं आंख के ठीक बग़ल में
गर्म लोहे से दागे गये निशान
सालों बाद भी तेज़ जलते हैं

मुलायम त्वचा होने के बाद भी
हाथ रखने पर
नमक की तरह खरखराहट
हमेशा मौजूद रहती है वहां

दाग़ कम हैं
लेकिन चोट बेहद गहरी है
संकेत हैं, वे अपने ही होंगे

छाती के ठीक पीछे
खरोंचेदार लाल-काले धब्बे
मुंह खोले मरहम-पट्टी को व्याकुल हैं
झाड़ू बुहारने के ही नहीं, घाव उघारने के भी काम आते हैं

दोनों घुटनों के ऊपर
जांघ की दशा ठीक वैसी ही है
जैसे बारह बरस की बच्ची की पहली तारीख़ आयी हो

जिस दुनिया में
ऐसी घटनाएं रोज घटती हैं
मैं डरती हूं आत्मकथा लिखने से
क्या इतनी क्रूरता को हूबहू उतारने की हिम्मत मुझमें शेष बची है?

2
लिखती हुई लड़कियां

लिखती हुई लड़कियां
गुनहगार रहीं हैं सदियों से
जबकि जो लिखना चाहिए था उन्हें सत्रहवीं सदी में
वह नहीं लिखीं सकी हैं इक्कीसवीं सदी में भी

रसोई में रखे डब्बों पे ही
उनका लिखना अच्छा लगता है
उनकी कहानियों में आंखें गाड़ दी जाती हैं
और खोदा जाता है उनका चरित्र

उनकी कविताओं में छिपा होता है सदियों का रहस्य
लिखने वाली स्त्रियों की व्यथा जिसे वे करती हैं चिन्हित
उसे ढूंढ़ा जाता है अलमारी में रखी किताबों में
जैसे पोखर में खोजी जाती है कुछ ख़ास क़िस्म की मछली

लिखती हुई लड़कियां
होती हैं बड़ी बेढब
नहीं जानतीं कितना कुछ छुपाना है, कितना कहना
वे कहती ही जाती हैं अंत तक

उनकी कलम में स्याही नहीं नमक होता है।

3
पितृप्रेम से वंचित लड़कियां

चाहती थी प्रेम से बात करूं कभी
लेकिन नामुमकिन था यह
हमारे प्रति शिकायतों के बड़े पुलिंदे थे
जो कभी भरभरा न सके

हां, तुम चलते ट्रक के नशेबाज़ चालक की तरह थे
जिसने कभी साइड मिरर नहीं देखा
जब देखते, बहुत देर हो जाती थी
यह जानते हुए भी तुम्हारा वही चुनाव रहता
जहां वर्षों से हादसे होते आ रहे थे

हम एक ही छत के नीचे रहते थे
लेकिन हममें कोई समानता नहीं थी
मैंने हमेशा तुम्हें दरवाज़ा घोषित किया
जिस दरवाज़े के अंदर मैं कई वर्षों तक मूक-बधिर सी बंद रही
सच है यह मेरी मूर्खता ही रही होगी

इतना कुछ समझने के बाद भी
एक आस रहती कि कभी तुम प्रेम के दो लफ़्ज़ कहोगे
तुम्हारे उस तेज़ हार्न जैसी तल्ख़ आवाज़ पर कांप उठती थी मैं
जिसके परिणाम में मेरी आंखें
रात-रात भर नमक में नहाती रहतीं

आंख लगते ही घबराहट होती, लगता तुम पुकार रहे हो
मैं डरकर तुम्हारे कमरे में झांकती
तुम गहरी नींद में रहते
मैं बिन पानी मछली की तरह छटपटाती रहती
और सुबह का तारा विस्मय से देखते हुए छिप जाता

लोग कहते हैं लड़कियां प्रेम में बहुत जल्दी पड़ जाती हैं
सच तो यह है कि उनमें से कई लड़कियां
अपने पिता के प्रेम से वंचित होती हैं।

मो. 81023 79981

जॉन एलिया[1] के लिए

शहंशाह आलम

1

दिल जब उदास रहता है मेरा

अक़्ल जब हैरान रहती है मेरी
इस नये ज़माने का हिसाब-किताब देखकर

तुम्हारी शायरी अपना हाथ बढ़ाती है
मेरी उदासी मेरी हैरानी दूर करने

तुम जॉन एलिया हो या कोई जादूगर हो
जो मेरी ज़िंदगी आसान कर देते हो हमेशा

2

तुम्हारी निगाह कितनी दूर तलक जाती है

तुमने सबसे पुरअमन वाक़या इसको बताया
कि आदमी-आदमी को भूल गया है अपने सुख में

यह सच ही तो है जॉन एलिया
आदमी अब आदमी को मारता है
और उत्सव मनाता है लाश पर चढ़कर

3

इंसान अब कितना उदास रहता है

किसी इंसान के लिए मरहम का
इंतज़ाम नहीं रखा गया है अस्पताल में

ज़ख़्म देने के औज़ार रखे गये हैं क़रीने से

मेरे लिए तो शायरी ही मेरे ज़ख़्म का इलाज है
जॉन एलिया, शायरी तुम्हारे लिए भी तो यही सब है

4

वक़्त ने तुमको आज़माया है कि तुमने वक़्त को

एक-दूसरे को आज़माने वाला यह सवाल
उतना पेचीदा नहीं है बदल रहे दृश्य के बीच

पेचीदा सवाल यह है कि हर पिता को
अपना घर ख़ुद से ढाना पड़ रहा है

और भेड़िया हंसता है झाड़ी के पीछे रहकर
भेड़िए की हंसी को बस तुम्हीं ने सुना उस बस्ती जाकर
जहां की गलियां सुनसान रह गयी हैं बच्चों के हंगामे से

5

तुम्हारा घर घर का दालान घर का आंगन
सबमें तुम्हारी ग़ज़ल गूंजती हैं ज़िंदगी से भरी

तुमको उदासी जब घेरती है मोहल्ले के रास्ते में
तुम नज़्मों से सब रास्तों की उदासी दूर करते हो

तुम्हारी शायरी का तिलिस्म है जो मेरे घर का दरख़्त
फल दे रहा है छांव भी और मां वाली मुहब्बत भी

6

अब अंजुमन में कितनी ख़ामोशी भर दी गयी है

इस ख़ामोशी की वजह से ख़ामोशी का सही मतलब
जाना है तुमने भी मैंने भी पेड़ ने भी पहाड़ ने भी

अब मैं हर महफ़िल को सजाता हूं तुम्हारी याद से
जुदा नहीं होना चाहता तुम्हारे शायर होने के जादू से

तुम्हारी याद मेरे शहर की ख़ामोशी को जो भगाती है

मो. 9835417537

---

1 जॉन एलिया (14 दिसंबर 1931 – 8 नवंबर 2002) का असली नाम सैयद सिब्ते असग़र नक़वी था, वे एक मेधावी उर्दू शायर अमरोहा में जन्मे, कुछ समय कम्युनिस्ट रहे, 1957 में पाकिस्तान चले गये, उनका पहला कविता संग्रह, *शायद* साठ साल की उम्र में छपा, तब शोहरत हासिल हुई—सं.

दो ग़ज़लें

सागर स्यालकोटी

1

इतना क़रीब था के पुकारा नहीं गया
आंखों में फिर भी उसको उतारा नहीं गया

उल्फ़त में हम तो चोट कई बार खा चुके
हो के शिकस्ता हाल दुबारा नहीं गया

इक बार हमने देखा था उसको बाज़ार में
आंखों से आज तक वो नज़ारा नहीं गया

डूबे जो इश्क़ में थे न होशो हवास था
हाथों से अपने पकड़ा किनारा नहीं गया

तू लाख मुझको दिल से मुहब्बत न कर मगर
'सागर' से प्यार तेरा बिसारा नहीं गया

2

हमारा अज़्म[1] के रोशन रखें दिल में उजालों को
उड़ा कर ले न जाये फिर कोई रोशन ख़यालों को

मैं तुझको चाहता हूं प्यार करता हूं दिले जानां
मुहब्बत में नहीं देता कोई तरजीह सवालों को

हमें बेदार रहना है दरिंदों की फ़राहत[2] से
कुचल डाले न कोई फिर हसीं ज़िंदा ग़ज़ालों को

ज़रूरी है किसानों को बचायें ख़ुदकुशी से हम
हमारे मुंह से फिर कोई नहीं छीने निवालों को

लगे हैं लूटने नेता हमारे देश को यारो
यहां हम पूजते रहते हैं बस हर दम दलालों को

सिकुड़ कर रह गये बस फ़ेसबुक मोबाइल तक 'सागर'
यहां अब कौन पढ़ता है पुराने उन रिसालों को

1 अज़्म= संकल्प
2 फ़राहत=चलाकी

पांच कविताएं

नवनीत पांडे

1

ढपोर शंख

जब देखो बजता
गरजता रहता है
यह किया, वह किया
यह कर दूंगा, वह कर दूंगा
यह दे दूंगा, वह दे दूंगा
सबकी झोलियां भर दूंगा
पर सब जानते हैं हक़ीक़त
वह सिर्फ़ गरजता है बरसता नहीं
जैसा दिखता है, है नहीं
सिर्फ़ फेंकता है
करता धरता कुछ नहीं

2

तुम्हारी जगह वहीं है...

उसे मेरे नाम के पीछे
कोई जात नहीं दिखी
उसने तुरंत रजिस्टर में
अनुसूचित, दलित चिन्हित कर दिया
हेय दृष्टि से मेरी देह, कपड़े, चेहरा देखते
पीछे ही पीछे अलग-थलग
एक कोने की ओर इशारा करते
कर्कश स्वर में बोला-
'जाओ, उधर बैठो!
जब नंबर आयेगा, आवाज़ दे देंगे'

मैंने आपत्ति जतायी
'उधर क्यों...'
'तुम्हारी जगह वहीं है...'

3

फ़सादों की जड़

यह जो तुझ में और मुझ में
फ़रक है
बस यही हां यही
सारे फ़सादों की जड़ है

4

छाती पर वार

मैं नाहक ही घबराता हूं
पीठ पीछे छुरा घोंपने वालों से
आज तो हद है
लोग बड़ी दबंगयी से
सीधे छाती पर वार करते हैं

5

धृतराष्ट्र, दुर्योधन, शकुनि

तरकश में नहीं तीर एक.
प्रत्यंचाएं चढ़ाये रहते हैं
धृतराष्ट्र, दुर्योधन. शकुनि हमेशा
बिसात बिछाये रहते हैं

मो.7976376171

चार कविताएं

रमेश प्रजापति

1
गेहूं का खेत

धरती के आंगन में
भरा-पूरा खड़ा हंस रहा गेहूं का खेत

बैसाख की धूप में
सोने-सा दमक रहा गेहूं का खेत

गुनगुनी धूप में
झुनझुना-सा बज रहा गेहूं का खेत

खेत-खलियान में
पायल-सा खनक रहा गेहूं का खेत

चिड़िया के कंठ में
गीत-सा घुल रहा गेहूं का खेत

गिलहरी की उछलकूद में
बच्चों की मस्ती-सा मचल रहा गेहूं का खेत

किसान की उदासी में
खुशियों के फूल-सा गमक रहा गेहूं का खेत

सूखे साहूकार की आंखों में
कांटा-सा खनक रहा गेहूं का खेत।

2

धूप दरांती

उनके हाथ में मशालें थीं
जो बस्ती ही नहीं
पूरा जंगल जला देना चाहती थीं

उनके पास कोठियों में पली
कभी न ख़त्म होने वाली भूख थी
जो बच्चियों के कोमल अंगों को खाकर भी
शांत नहीं होना चाहती थी

उनके पास सबकुछ होते हुए भी
वह नहीं था जिनसे खिल उठता है
दिशाओं का मलिन चेहरा

उनके महलों में कोई दरीचा नहीं था
जहां से
चिड़िया देख सके खुला आकाश
जीवन को जकड़े
गुंबदों पर चौकन्ने बैठे बाज़

उस पार धुआं-ही-धुआं फैला था दूर तक
और इस पार खिलखिला रहे हैं
जीवन के मटमैले फूल

सब हदों को तोड़कर हवा के झोंके ने
उनकी सांसों में भर दी जीवन की ख़ुशबू

उन्होंने अपनी बंदिशों से बाहर निकल
खुले आकाश में बांहें फैलाते देखा कि
खेतिहर-मज़दूर के उदास दिनों की फ़सल को
धूप दरांती से काटता है सूरज
सब बंदिशें तोड़कर स्त्री ने

खुले आकाश में अपने होने की दस्तक दी

आज उनके बरछी-भाले
काट रहे हैं उनके ही दक़ियानूसी विचार
और सूर्ख फूलों की ख़ुशबू से गमक रही है हवा की सांसें।

3
पूंजीवाद के फुग्गे

अगर लहलाते खेतों की बात होगी
तो खिलखिला उठेंगे
किसान-मज़दूर के उदास चेहरे

अगर मस्ती में झूमते जंगल की बात होगी
तो बज उठेंगे
दहशत में लिपटी पड़ी आदिवासियों की झोंपड़ियों में मृदंग

अगर बल खाती नदी की बात होगी
तो खिल उठेंगे
सूखी धरती की देह पर पानी के फूल

ठिठुरती झील में उतरकर चांद के नहाने की बात होगी
तो सर्द हवा की सिकुड़ती रात में
नीला आकाश बिछ जायेगा झील की तलहटी में

जिसे देखो अंधेरा बोने में लगा है
जिसे देखो शिक्षा की दुकानों में
धर्म की पोटली उठाये खड़ा है
जिसे देखो मृत्यु का गीत गाये है
जिसे देखो आदमी का वजूद मिटाने में लगा है
जिसे देखो जनतंत्र की भेड़-बकरी दुहने में लगा है

पहाड़ काटने की
चिड़ियों के हौसले बांधने की

हरियाली उजाड़ने की
चांद पर थूकने की
अंधेरे के पक्ष में सूरज को नकारने की

हर तरफ़ हो रही हैं बातें
और हम मस्त हैं विकास का स्वप्न देखने में

हवा में उड़ते पूंजीवाद के फुग्गों से
अटा पड़ा है आकाश
और उखड़ी सांसों से हांफ रही है धरती।

4
आदिवासी

जंगली बाशिंदों की अपनी दुनिया होती है

अपना आकाश
अपना जंगल
अपनी ज़मीन
अपनी भाषा
अपना नृत्य
अपने लोकगीत
अपनी जीवन-शैली
और अपने रीति-रिवाज़ हैं

नदी, उनके आंगन में मचलती है
पेड़, उनके मृदंग की थाप पर झूमते हैं
उनकी हंसी में कुंदरू के फूल खिलते हैं
उनके कानों में वनस्पतियां जीवन का राग खोलती है

वे, अपनी सभ्यता और संस्कृति से प्रेम करते हैं
अपने मूल्य और दर्शन को आत्मसात करते
अपनी परंपरा को जीते-मरते हैं
जंगल उनका आश्रय है और वे हरदम जंगल के गीत गाते हैं

विकास का स्वप्न दिखा कर जंगल पुत्रों को बेरहमी से
जल,जंगल, ज़मीन से बेदख़ल कर रहे हैं
साहूकार की आंखों में चुभती है आदिवासी स्त्री की देह
उनके जीवन की बेल पर छाये रहते हैं हमेशा उनके सुख-दुःख

बावजूद इसके पूंजीवाद की गिद्ध दृष्टि
उनकी अस्मिता पर ही नहीं
बल्कि उनकी प्राकृतिक संपदा पर भी टिकी है
दरअसल अपने जीवन में कोई बाहरी हस्तक्षेप
क़तई पसंद नहीं करते आदिवासी।

मो. 9891592625,7011954149

कहानी

लड़का और लड़की

रजनी दिसौदिया

'हे… आई एम इन योर एरिया'
'इट्स नॉट सो फ़नी'
'सीरियसली यार, वान्ट टू मीट यू'
'सीरियसली…!'
'यस बडी, आएम एट योर प्लेस.... विश्वविद्यालय मैट्रो स्टेशन,' लड़के ने यक़ीन दिलाने के लिए कहा।
' ओके वेट अ लिटल, आइल कम..' क्लास जस्ट ख़त्म हुई ही थी।
लड़का लड़की की मुलाक़ात लगभग दो-तीन महीने पहले इंस्टाग्राम पर हुई थी। लड़की को फ़ोटोग्राफ़ी का शौक था। शायद थोड़ा शऊर भी। इसलिए उसकी फ़ोटोग्राफ़ी, उस पर बुनी स्टोरी लड़के को पसंद आ गयी थी। आमने सामने, पेड़ के तने पर ऊपर की ओर चढ़ती बिल्ली और नीचे की ओर उतरती गिलहरी की जो फ़ोटो लड़की ने इंस्टाग्राम पर डाली थी, उस पर उसे हर बार की तरह इस बार भी बहुत से लाइक्स मिले थे और तारीफ़ भरे शब्द भी। पर इस लड़के का 'ब्यूटी स्प्रैड ब्यूटी एव्रीव्हेयर' लड़की के दिमाग़ में अटक गया था। बस, फिर क्या था, पता ही नहीं चला कि कब इंस्टाग्राम से फ़ेसबुक, फ़ेसबुक से व्हाट्स अप, और फिर दोनों के मोबाइल फ़ोन वर्बल और लिखित चैटिंग से भर गये। दोनों के लिए दुनिया जैसे ग़ायब हो गयी। जैसे किसी मोटी रज़ाई के नीचे दब गयी। अब तो वे दोनों और बस दोनों के मोबाइल।

'व्हेयर आर यू डीयर...' मैट्रो के बाहर आकर लड़का आसपास फैली तेज़ आवाज़ों में जैसे गुम होने लगा। इतने सारे चेहरे वह किस दिशा में देखे? किसे देखे? यों लड़की की ढेरों डी.पी.उसने देखी थीं। उसके दिल में उसकी अनेक छवियां विराजमान थीं। वह उन छवियों को हर कोने से पचासों बार देख चुका था। उसके घुंघराले लटकते बालों और बड़ी-बड़ी कजरारी आंखों पर वह मर मिटा था। एक क्लास था उसकी एपीयरेंस में। होता भी क्यों न वह दिल्ली विश्वविद्यालय के सबसे नामी कॉलेज की स्टूडेंट थी। कॉलेज जिसके नाम से ही लोगों के शरीर में झुरझुरी सी दौड़ जाती थी। लड़का मैट्रो स्टेशन से निकल कर बिलकुल बाहर चला आया। ई रिक्शा व रिक्शावालों के बीच चीख पुकार मची थी। रिक्शा वाले सवारियों को मैट्रो स्टेशन से निकलने तक की मोहलत नहीं दे रहे थे।

'कमलानगर... मल्कागंज...' , रिक्शे वाले चिल्ला रहे थे। अपना-अपना रिक्शा छोड़ वे मैट्रो स्टेशन से बाहर निकलने वाली सवारियों की ओर यों लपक रहे थे जैसे उन्हें जबरन उठा कर अपने रिक्शा में लाद ले भागेंगे। हर जगह कंपीटिशन है। अगर तसल्ली से सवारी के इंतज़ार में अपने रिक्शा पर बैठे रहे तो शायद सवारी उन तक पहुंच ही नहीं पायेगी। हरेक का यही अनुभव था कि साथ वाला बाज़ी मार ले जायेगा और आगे बढ़कर सवारी को पहले लपक लेने की होड़ में वे अक्सर आपस में

उलझ पड़ते।

'अरे मौमे काहे घुस रयो है', संभावित सवारी के साथ साथ पीछे की ओर तेज़ी से लौटते एक रिक्शेवाले को दूसरे ने लगभग धक्का देते हुए उसे अपने पर गिरने से बचाने की कोशिश में कहा,

'तो तू काय याहं खरौ है, तनिक परे न हो सकै भौसरी...'

'गारी किसे दे रयो है, हरामी...' कहता हुआ जो पहला रिक्शेवाला था वह दूसरे पर टूट पड़ा। ये ले मुक्का और ये ले धक्का। उन्हें छुड़ाने को दो-तीन रिक्शेवाले भी उनकी ओर भागे। बाक़ी के रिक्शेवाले इन गंवार और कम अक्ल रिक्शेवालों की ओर से सवारियों का ध्यान हटा कर उनके सामने कुछ तमीज़ से पेश आने लगे। जैसे यह बताना चाहते हों कि वे इन जाहिलों की तरह सवारियों पर टूट पड़ने वालों में से नहीं हैं। परंतु वास्तव में उन्हें झगड़ों में उलझा देख सवारियों को अपने लिए लूट ले जाने का उनका भी यह अलग ही अंदाज़ था। वरना रोज़ वे भी इसी तरह सवारियों के लिए खुले आम गाली गलौच तक करने नज़र आया करते हैं।

लड़के ने अपने सामने की ओर दृष्टि दौड़ायी। थोड़ी देर के लिए ऐसा लगा जैसे वह जनपथ पर है। जगह-जगह खोमचे वाले साइकिल और रेहड़ी पर या ईंट और फट्टों का इंतज़ाम कर अपना-अपना माल सजाये ग्राहकों को पुकार-पुकार कर अपनी ओर बुला रहे थे। एक साइकिल वाला अपनी साइकिल के कैरियर पर उबला भुट्टा बेच रहा था। नमक-मिर्च और नीबू लगा भुट्टा दूर से ही मुंह में पानी भर रहा था। पर लड़के-लड़कियों को ऐसी देसी चीज़ें आजकल कहां पसंद आती हैं, वे तो मोमोज़ वाले को घेरे खड़े थे। मोमोज़ वाला अपने दो हाथों से चार हाथों का काम कर रहा था। इतने ग्राहकों के बीच भी उसे भरपूर याद रह रहा था कि किससे कितने पैसे लेने हैं और किसको कितने वापिस करने हैं। मोमोज़ वाले के सामने मोबाइल के फ़ैंसी कवर बेचने वाला खड़ा था। लड़कियां अपने अपने मोबाइल के साइज़ के कवर ढूंढ़ रहीं थीं। लड़के ने उनकी ओर देखा और सोचा, ये सारी लड़कियां शायद किसी एक ही इलाक़े की रहने वाली हैं। उसे नहीं पता कि उसके दिमाग़ में ये विचार क्यों आया, शायद सबका ड्रेसिंग सेंस एक जैसा था। लड़के ने जेब से मोबाइल निकाला, शाम के चार बज चुके थे। उसे वापस घर भी लौटना था। पता नहीं, वह लड़की कहां फंसी रह गयी थी। उसकी उंगलियां फिर से टाइप करने लगीं।

'????'

'जस्ट रीच्ड वेयर यू आर?' लड़के ने मुंह उठाकर सामने देखा, वह आ रही है। वही घुंघराले बाल जो अपने उलझाव में ही बेहद ख़ूबसूरत थे। आंखों पर हैरी पॉटर वाला चश्मा। न जाने कैसे आसपास की सारी चिल्ल-पों एकदम शांत पड़ गयी। जैसे किसी ने उस दृश्य को म्यूट कर दिया हो। फिर उन दोनों के बीच एक अदृश्य सुरंग सी बन गयी। उस सुरंग के भीतर से लड़की जल्दी जल्दी क़दम बढ़ाती उसकी ओर आ रही थी। तेज़ी से चलने के कारण उसके कान में बड़े बड़े बाले तेज़ी से हिलहिल कर बालों के साथ लुकाछुप्पी खेल रहे थे। अब दोनों उस सुरंग के भीतर थे और बाहर की सारी दुनिया जैसे ग़ायब हो गयी थी। वैसे भी दुनिया तो सुरंग के बाहर ही थी। लड़के के दिमाग़ में अनेक कल्पनाएं आयीं कि जैसे ही वह लड़की उसके क़रीब पहुंचेगी, वह उससे लिपट जायेगी। उसे चूम लेगी और...और... न जाने क्या-क्या।

लड़की मुस्कुराती हुई उसके पास आ पहुंची तो वह सुरंग छन्न से बिखर गयी। बाहर मौजूद

दुनिया अपनी तमाम चिल्ल-पों के साथ वापस वहां आ धमकी।

'हेलो!' हाथ आगे बढ़ाकर लड़की ने कहा।

'बहुत देर से वेट कर रहे हो।'

'हां...नहीं..नहीं'

'व्हॉट हेप्पन डूड', लड़के के अचकचा जाने से लड़की को हंसी आ गयी।

'नथिंग' लड़के ने भी मुस्कुरा कर कहा।

'यार तुम तो बिल्कुल वैसी ही हो जैसी फ़ोटोज़ में लगती हो, बस थोड़ी मो..टी हो।' कहकर उसने चुटकी ली।

अब वह भी सहज होने लगा था। 'नो बॉडी शेमिंग प्लीज़' लड़की ने अपनी बड़ी बड़ी आंखों से घूर कर देखने का नाटक किया। लड़की सच में मोटी थी। यह तो उसकी लंबाई ठीक ठाक थी, वरना तो वह अच्छी ख़ासी मोटी थी।

'आई टोल्ड यू न इट्स बिकाज़ माई मेडिसिनस', लड़की ने चलते हुए कहा।

दोनों मैट्रो के एरिया से निकलकर रोड पर 'छात्र मार्ग' पर आ गये थे।

'यार कितना ट्रैफ़िक और शोर है इस रोड़ पर...' बगल से ऊंची आवाज़ में हॉर्न बजाती गाड़ियों को निकलते देख लड़के ने कहा।

'सात-साढ़े सात बजे तक रहेगा, उसके बाद धीरे धीरे सड़कें ख़ाली हो जायेंगी।'

'तुम तो ऐसे बता रही हो जैसे सात साढ़े सात बजे तक तुम यहीं यूनिवर्सिटी में ही रहती हो।'

' यस...! ऑफ़कोर्स, मेरा घर यहीं यूनिवर्सिटी में ही तो है।' लड़की ने कहा।

'तभी...' लड़के ने मन ही मन कहा।

वह इतनी देर से सोच रहा था कि क्या बात है शक्ल-सूरत में तो यह वही लड़की है, जिसे वह पिछले दो-तीन महीने से जानता है। फेसबुक और इंस्टाग्राम पर यह जितनी हॉट लगती है, यहां तो उतनी थी ठंडी मालूम पड़ती है। सड़क पर साथ चलते हुए भी इतनी दूरी पर चल रही है कि ग़लती से भी हाथों की उंगलियां आपस में कहीं टकरा न जायें।

'तुम्हें अच्छा नहीं लगा, मैं यहां... यों नो...' लड़के ने पूछा। उसे लगा कि उसे लड़की से पहले पूछना चाहिए था। वह तो यों ही आ धमका। माना कि लड़की बोल्ड एंड कांफ़िडेंट है, पर घर और परिवार भी तो है। लड़की सच में डिस्टर्ब्ड थी।

'नो-नो.... नो वे, यू आर वेलकम', लड़की ने लड़के की उदासी देखकर कहा।

'असल में आज मूड कुछ अच्छा नहीं है, बल्कि अच्छा हुआ यू केम, चलो सुदामा की चाय पीते हैं।' उसने सामने की ओर इशारा किया। चलते चलते वे रेड लाईट तक आ गये थे। यह सीधी सड़क थी जो 'छात्र मार्ग' कही जाती थी। लड़कियां इसकी अंग्रेज़ी की स्पेलिंग का फ़ायदा उठा कर इसे 'छात्रा मार्ग' कहती थीं। यहां मेला सा लगा था, लड़के-लड़कियों के झुंड के झुंड सड़क के दोनों ओर काग़ज़ के कपों में चाय लेकर बैठे थे। लड़का-लड़की भी वहां जाकर बैठ गये। लड़की ने इशारे से दो चाय लाने के लिए कहा।

'हूं, तो क्या चल रहा है... आजकल?' लड़की ने लड़के के चेहरे की ओर कुछ इस तरह

देखा कि वह फिर से सकपका सा गया। फ़ोन की चैटिंग में उसकी उंगलियां जवाब लिखते समय जितनी तेज़ी से घूमती थीं वहीं मुंह में जीभ को जैसे शब्द ढूंढ़- ढूंढ़कर लाने पड़ रहे थे।

'कुछ नहीं आज एक दोस्त से मिलने मुकर्जी नगर आया था... सोचा... तुमसे भी मिल लिया जाये।' लड़के ने सहज होते हुए कहा।

मोबाइल की स्क्रीन पर कुछ भी लिखते हुए हम प्राय: कितने सहज रहते हैं, एक दम आश्वस्त। वहां सामने वाले का चेहरा हमारी कल्पना से निर्मित रहता है। उसे हम जैसा बनाना चाहते हैं वैसा बना लेते हैं, जिस भाव मुद्रा में बैठाना चाहते हैं बैठा लेते हैं। वास्तव में वह वहां होता ही नहीं है, वहां उसमें भी हम ही होते हैं। बिना किसी रोकटोक हमारी बातचीत चलने लगती है। सीधे सीधे, आमने सामने की वास्तविक दुनिया में होने से सामने वाले की मुखमुद्रा, उसके हावभाव हमारी भाषा की रफ़्तार को बहुत हद तक बांधते व साधते हैं। दोनों आज पहली बार मिल रहे हैं। मोबाइल पर दो तीन महीनों से चैटिंग करते हुए यह मान बैठे थे कि जैसे एक दूसरे को कितना क़रीब से, कितना बेहतर ढंग से जानते हैं। आज एक दूसरे से साक्षात मिलते हुए बहुत अजीब लग रहा था। यह अजीब सा अजनबीपन बार बार बीच में पसरा जा रहा था जिसे दोनों भरसक हटाने की कोशिश कर रहे थे। चायवाला लड़का दो छोटे कपों में चाय लेकर आ गया। शायद वह लड़की से बख़ूबी परिचित था।

'कुछ खाने को चाहिए मैडम?' उसने लड़की से पूछा।

'यू वांट समथिंग?' लड़की ने लड़के से पूछा।

'ऊं..हूं..' लड़के ने 'न' में सिर हिलाया और चाय की चुस्की ली, चाय सचमुच अच्छी बनी थी।

सामने एक बाइक आकर रुकी। बाइक के झटके से रुकने के कारण बाइक पर पीछे बैठी लड़की आगे बैठे लड़के की पीठ पर चढ़ती हुई आगे की ओर झुक गयी। यह वास्तव में बाइक वाले लड़के की शरारत थी। लड़की, लड़के की इस शरारत पर इतरायी। 'हे राम पटकैगो के?' लड़के ने मोटर साइकिल खड़ी कर दी। अभी लड़की उसी सीट पर बैठी थी। लड़का बैठी लड़की के सामने सट कर खड़ा हो गया। लड़की ने उसके कंधों पर दोनों हाथ रखते हुए कहा; 'घणी सिर पै मतना चढ़ावै, एक बार चढ़गी तो फेर न उतरूं', लड़के ने भी उसकी कमर में हाथ डालकर उसे अपनी ओर खींचा और बोला 'एक बार चढ़ तो जा बेग्गम।'

यह सब हरकत ठीक अपने सामने होते देख कर सड़क के फुटपाथ पर बैठे हमारी कहानी के नायक और नायिका अकबका गये। लड़का जैसे इस कोशिश में लग गया कि कहीं वह लड़की उसके बारे में कुछ ग़लत न सोच ले। उसे उस मोटर साइकिल वाले लड़के लड़की की हरकतें अच्छी नहीं लगी। लड़की जिस तरह चुपचाप चाय पी रही थी उससे वह बेचैन होने लगा। वह चाहता था कि वह उस लड़की को बताये कि वह बिलकुल इस मोटर साइकिल वाले लड़के की तरह का नहीं है।

'तुम मेरे घर चलोगे?...यहीं पास में ही है।' लड़की ने चाय की आख़िरी चुस्की ली।

'घर... घर क्यों?' लड़के की ज़बान लटपटा गयी। उसे कुछ समझ नहीं आया। वह क्या कहे। वह एक अच्छा लड़का है, ईमानदार और शरीफ़..., पर इस ईमानदारी और शराफ़त को कैसे सिद्ध करे? उसने अपना मोबाइल उठाया, लगभग पांच बजने को आये थे।

'हूं... देखो… अभी तो हम एक दूसरे को ठीक से जानते भी नहीं.. अभी घर…?'

'इसीलिए तो डूड...'

'वॉ…ट'

'वॉट यह कि अगर हम अब इसी तरह मिलते हैं, तो आर फ़ेमेली शुड नो, शुड नो विथ हूम वी आर…'

लड़की अपने दिमाग़ में बिलकुल स्पष्ट थी। पर लड़का इस धमाके के लिए तैयार नहीं था। दो महीने की व्हाट्स अप की दोस्ती… उसने यह सब सोचा ही कहां था। दिन रात मोबाइल पर होने वाली उनकी ढेरों बातचीत का भविष्य क्या…कैसा होगा? बस उसे अच्छा लगता था। जब- जब उस लड़की का फ़ोन आता, जैसे उसके चारों ओर मधुर संगीत बजने लगता। उसकी सारी चिड़चिड़ाहट दूर हो जाती। सारी टेंशन, सारी बोरियत, अकेलापन न जाने क्या क्या… सब सब दूर हो जाता। लड़की की आवाज़ उसके भीतर तक उतर जाती। जहां जहां, जो जो घाव हैं उस पर जैसे मलहम सा लगाती। वह उसके साथ, उसके ख़याल के साथ, उसकी आवाज़ के साथ रहना चाहता था। पर कौन सी लड़की? कौन सी दुनिया? वह लड़की, वह दुनिया ऐसी तो नहीं थी। हां सामने बैठी लड़की हुबहू वही है … पर वह नहीं भी है… मतलब…? मलतब पता नहीं, पर कुछ है जो उसे बेचैन कर रहा है। वह इस लड़की को छोड़ नहीं सकता, नहीं बिलकुल नहीं… पर। लड़की काफ़ी हद तक लड़के की उलझन समझ रही थी। वह बिल्कुल जानती थी कि प्राय: इस तरह की फ्रेंडशिप में फ़ेमिली को शामिल करना बचकाना सी हरकत थी। और वह लड़की जो वूमन इंपावरमेंट पर लेक्चर दे सकती थी, जो जेन्डर इक्वालिटी के नाम पर एल.जी.बी.टी. समूह के साथ प्राइड-परेड में जाती रहती थी। उसके बारे में कोई लड़का कभी यह ख़यालों में भी नहीं सोच सकता था कि वह उससे पहली ही मुलाक़ात में अपने घर चलने का आग्रह करेगी।

'तुम परेशाम मत हो, बस मैं तुम्हें अपनी मां से मिलवाना चाहती हूं।'

'पर क्यों?... मुझे तुम्हारी मां से…' बदहवासी में शब्द लड़के के मुंह से निकलने तो लगे थे, पर संस्कारों ने पहले ही रोक लिया।

'आई एम नॉट डिसऑन यो…र मदर… बट आई एम नॉट रेड्डी…' घबराहट में उसने लड़की का हाथ पकड़ लिया।

'येस आई नो… बट ट्राई टू अंडरस्टैंड.... यू नो आई हैव बाई पोलर डिस..आडर।' अब लड़की की आंखों में आंसू उभर आये थे, उसने लड़के के हाथ को कस कर पकड़ लिया। जैसे उसे कभी दूर नहीं जाने देगी। लड़के को वे सब बातें याद आने लगीं। सच में लड़की ने बताया था कि इस डिस..आडर के चलते उसे मूडस् स्विंग्स होते हैं। मतलब कभी कभी ख़ामख़ाह... बहुत बहुत ऊर्जा और खुशी भर जाती है। इस अतिरिक्त ऊर्जा और उत्साह के चलते हद और बेहद की समझ भी धूमिल हो जाती है। और कभी कभी बिना किसी बात के उदासी का घिर आना, कुछ भी करने की इच्छा और हिम्मत का न बचना। दिनभर बिस्तर में पड़े रहना। कई बार तो वह ख़ुद भी उसकी उन उदासियों में घिर जाया करता था। पर वे सब बातें फ़ोन पर उसके लिए सिर्फ़ सूचनाएं होती थीं। इन सब बातों का लड़की की ज़िंदगी पर क्या असर था इसके बारे में न उसने सोचा था और न ही कभी सोचने का मौक़ा था।

'चलो… कहां है तुम्हारा घर?…' लड़के ने अचानक कहा। लड़की की आंखें चमक उठीं।

'यहीं पास में।'

दोनों फुटपाथ से उठकर खड़े हो गये। अचानक से वहां आसपास की भीड़ भाड़ पर उनका ध्यान फिर से गया। भीड़ पहले से ज़्यादा हो गयी थी। सर्दियों के दिन थे इसलिए जैसे जैसे ठंड बढ़ रही थी, लड़के लड़कियों के झुंड के झुंड आ आकर वहां बैठते जा रहे थे। चाय तो एक बहाना थी। वास्तव में यह जगह उन्हें सामाजिक प्राणी होने का बोध कराती थी। यहां आने वाले लड़के लड़कियां आसपास के हॉस्टलों और पी.जीज़ की बोरियत को यहां झाड़ने आते थे।

लड़की लड़के को लेकर चल तो दी पर उसने अभी तक अपनी मां को उस लड़के के बारे में कुछ बताया तो था नहीं। अभी तक वह किसी लड़के को घर लेकर भी नहीं गयी थी। पता नहीं मां कैसे रियेक्ट करेंगीं। 'पर जो भी हो..', लड़की ने सोचा। दोनों चुपचाप चल रहे थे। दोनों को ही बहुत अजीब लग रहा था। यह ज़्यादती थी, पर वह मजबूर थी। अगर इस दोस्ती को आगे तक चलना है तो इसे मां से मिलवाना ही पड़ेगा। मां ने उसे ख़ूब समझाया था 'तुम्हारा दिल बहुत नाज़ुक है टैडी, इसे यों ही किसी को मत दे देना।' पर उसका दिल उसकी कहां सुन रहा था, वह तो जैसे लड़के के पीछे पीछे चल रहा था। उधर लड़के का दिल, लड़की के दिल को अपने पीछे आता देख तो रहा था पर कोई अनजान आहट सुन कर चौकन्ना भी हो रहा था।

'मैं चल तो रहा हूं पर ज़्यादा देर नहीं रुक पाऊंगा... तुम संभाल लेना…', लड़के ने लड़की की चिरौरी की। अब वही उसकी रक्षक थी। अब वे एक कालोनी में आ गये। ये किसी अस्पताल के आवासीय फ़्लैट्स थे। लड़का चौकन्ना होकर सब बोर्ड पढ़ता जा रहा था।

'तुम्हारे पापा?…'

'डॉक्टर हैं।' लड़के के प्रश्न को बीच में पकड़ कर लड़की ने जवाब दिया।

घर का दरवाज़ा खुला ही था। किस नयी अपरिचित अप्रत्याशित जगह पर अचानक पहुंच जाने पर हम अत्यंत सजग हो उठते हैं। जिस भी कारण से हमारा वहां होना ज़रूरी बन पड़ा हो, अब हम वहां की एक एक चीज़, एक एक आवाज़, हर एक मोड़ और इशारे को पकड़ने की कोशिश करने लगते हैं। जिस गैलरी से उसने घर में प्रवेश किया वहां दीवार पर एक तस्वीर टंगी थी, पर पर्याप्त रोशनी के अभाव में वह उसे देख नहीं पाया। लड़का आज जब घर से निकला था तो उसने तय किया था कि आज वह उस लड़की से ज़रूर मिलेगा जो पिछले दो तीन महीनों से उसके मोबाइल में रह रही थी। वह उसी में घर बनाये थी। उसके असली घर को देखने जानने की इच्छा लड़के ने बिल्कुल नहीं की थी। नहीं की थी मतलब, उनके इस रिश्ते में घर था ही नहीं। दोस्ती में घर की क्या ज़रूरत ? दोस्ती, दोस्ती है कोई रिश्तेदारी थोड़े ही न है कि मेहमान की तरह फल लेकर रिश्तेदार से मिलने उसके घर जाना पड़े। दोस्ती तो कहीं भी निभायी जा सकती है। कहीं किसी भी चौराहे पर, नुक्कड़ पर, नहीं तो किसी रेस्तरां, फ़ूड कॉर्नर पर। और यह सब भी मयस्सर न हो तो मैट्रो में सफ़र करते, किसी दोस्त की मांगी हुई मोटर साइकिल की बदौलत भी दोस्ती निभा ली जाती है। इसलिए लड़का मोबाइल वाली लड़की से मिलने यूनिवर्सिटी चला आया था न कि लड़की की मां से मिलने उसके घर जाने को आया था।

घर में घुसने के बाद दाहिनी ओर बैठकी थी तो बायीं ओर डाइनिंग टेबल। लड़के ने एक ही नज़र में मुआयना किया। डाइनिंग चेयर पर बैठी औरत ने जो बैठकर मटर छील रही थी, उनकी ओर

गर्दन घुमायी ही थी कि लड़की बोल पड़ी, 'ममा ये अयान है।' बेशक लड़की ने बहुत ही सहज ढंग से यह बात कही थी, पर भीतर से वह खूब असहज थी। उसकी आवाज़ में कंपन था। उधर लड़की की मां ने हैरानी परेशानी वाले भावों को भरसक छिपा कर 'अच्छा...अच्छा...' कहा। इसके कुछ देर बाद तक उन्हें सूझा ही नहीं कि आगे क्या कहे? पर जल्दी ही ख़ुद को संभालते हुए उन्होंने लड़के को वहीं दूसरी कुर्सी पर बैठने को कहा। किसी आज्ञाकारी बच्चे की तरह लड़का जाकर वहां बैठ गया। यों लड़की की मां लगातार मटर छीलते हुए यह दिखाने का प्रयास कर रही थी कि वह इस असंभावित स्थिति से परेशान नहीं है। उधर लड़की ने लड़के को घर लाकर अपनी मां पर ऐसे छोड़ दिया कि जैसे 'अब तुम जानो तुम्हारा काम..., पर एक बात समझ लो यह ठीक वैसा ही लड़का है जिसे मैं ढूंढ़ रही थी। जब-जब मैं इससे बात करती हूं तो मेरे चारों ओर खिंची कांच की दीवार चटक कर टूट जाती है और हवा का मस्त ताज़ा झौंका मेरे बालों को सहला जाता है। और आज जब मैं इससे मिली तो जान गयी कि कम से कम यह शरीर पर रेंगने वाला कीड़ा नहीं है।'

सर्दी का मौसम था, शाम के साढ़े पांच बज रहे थे। लड़की की मां ने लड़की से कहा; 'टैडी, अयान के लिए चाय ही बना लो।'

'नहीं, आंटी मैं चाय नहीं पीता।' लड़का जल्दी से बोल गया।

'हां, ममा ये चाय नहीं पीता..' लड़की ने भी उसके सुर में सुर मिलाया।

'कोई बात नहीं मेरे लिए तो बना दो। और... और... इसे, हां, वो गाजर का हलवा खिला दो जो कल बनाया था।' इससे पहले कि लड़का मना करता, लड़की की मां उसकी ओर मुख़ातिब हुई और बोली 'तुम्हें पसंद आयेगा अयांश... घर का बना है।'

'ममा ! अयान..' लड़की डाइनिंग टेबल के बग़ल में रखी चौड़ी लकड़ी की अलमारी की ओर बढ़ते हुए मुस्कुराती हुई बोली। मैलामाईन की छोटी कटोरी निकाल कर उसने हलवा माईक्रो में गर्म करने रख दिया। साथ ही वह रसोई में जाकर काम करने लगी। लड़का बैठकर इधर उधर देखने लगा। जब तक हलवा गर्म हो रहा था, तीनों ने राहत की सांस ली। लड़के को वहां बैठे हुए ही रसोई में चाय बनाती लड़की नज़र आ रही थी। पर इस नज़र के बीच में उसकी मां बैठी थी, इसलिए लड़का लड़की की ओर न देखकर इधर उधर देख रहा था। वह जहां बैठा था उसके बायीं ओर बैठकी थी। उसकी सामने वाली दीवार पर तीन पेंटिंगें लगी थीं। इनमें से दो को तो उसने पहचाना। एक भगवान बुद्ध की थी। दूसरी भी भगवान बुद्ध की ही थी, जिनमें उनके हाथ में कमल का फूल था। यह अजंता की प्रसिद्ध पेंटिंग थी पद्मपाणि बुद्ध। पर यह तीसरी पेंटिंग किसकी है? उसकी समझ में नहीं आ रहा था। यह जो भी था कोई राजा या राजकुमार जिसने बड़ा डिफ़रेन्ट सा मुकुट पहना हुआ था। वह उसे बड़े ग़ौर से देख रहा था कि लड़की की मां बोल पड़ी। 'वह वज्रपाणि बुद्ध हैं।' अक्सर लोग जब उनके घर आते तो इस तीसरी पेंटिंग के बारे में ज़रूर पूछते थे। इसलिए उन्होंने लड़के के पूछने से पहले ही बताया।

'हैं..!' लड़के ने प्रश्नवाचक दृष्टि से औरत की ओर देखा। औरत के बोलने से पहले ही पलटकर लड़की बोली,

'वज्रपाणि बुद्ध वे बुद्ध जिनके हाथों में बिजली...वो आसमान में चमकने वाली बिजली है। वे उसकी शक्ति को हैंडल करते हैं।

'आसमान वाली बिजली को तो इंद्र हैंडल करते हैं न यार' लड़के के मुख से जैसे ही 'यार'

शब्द निकला वह संभल गया, उसने तुरंत लड़की की मां की ओर देखा। वास्तव में वह शब्द उसके मुंह से फिसल गया था। उसने पकड़ने की कोशिश की, पर तीर जा चुका था। फिर भी इस वज्रपाणि बुद्ध ने घर के तनाव को कुछ ढीला कर दिया। गाजर का हलवा अब उसके सामने था जिसे उसने उठाकर ठीक अपने पास रख लिया। उधर लड़की भी चाय छान रही थी। मां भी आगे की बातचीत के लिए तैयार हो गयी।

'तुम लोग एक दूसरे को कब से जानते हो? मेरा मतलब...'

'आज हम पहली बार ही मिले हैं आंटी...'

'पर फ़ोन पर कुछ महीनों से बात हो रही थी...' आगे का वाक्य लड़की ने पूरा किया।

'...और ये आज ही मुझे आपसे मिलाने...' लड़के ने अपने भीतर का असंमजस बाहर उजागर किया। उसके भीतर रह रह कर यह बात उठ रही थी कि वह इस मीटिंग के लिए तैयार नहीं था। पता नहीं, लड़की की मां उसके बारे में क्या सोच रही होंगी। वह लड़की की मां को यह बताना चाह रहा था कि उसे ग़लत न समझा जाये। वह कोई दिलफेंक आशिक़ नहीं है। उसे तो एक अदद अच्छी दोस्त की तलाश थी। और पता नहीं पहले से तलाश भी थी या नहीं, पर मिलने के बाद उसे उसमें अच्छी दोस्त नज़र आ रही थी।

उधर लड़की की मां समझ ही नहीं पा रही थी कि ऐसा कैसे होता है कि बिना किसी काम के, कोई केवल फ़ोन के ज़रिये हुई जान पहचान के लिए, कैसे उठ कर चल देता है? बिना जान पहचान और काम के कोई किसी को फ़ोन ही क्यों करता है और दूसरा क्यों उसे ऐसा करने देता है। जिस गाम जाना नहीं उसका पता क्या पूछना। पर आजकल की दुनिया का क्या किया जाये वहां तो बिना कुंडी खड़काये ही कोई भी सीधा अंदर आ सकता है। सोचते सोचते उनके हाथ रुक जाते और दिमाग़ तेज़ी से चलने लगता। वे बार बार सिर झटक कर मटर छीलने लगतीं। इस समय मटर छीलना उन्हें बहुत सुकून दे रहा था। जैसे वे कोई बहुत ज़रूरी और महत्वपूर्ण काम कर रही थीं। उसे बीच में नहीं छोड़ा जा सकता था। उसने अचानक पूछा, 'फ़ोन पर किसी को कैसे पता चले कि जिससे बात हो रही है वह वही है जिससे बात हो रही है?'

'मतलब?' लड़के-लड़की ने एक साथ पूछा।

'मतलब, कोई अपने बारे में झूठ बोलकर भी तो बात कर सकता है... मतलब, तुम्हें कैसे पता कि तुम जिस लड़की से बात कर रहे थे वह सच में डी यू में पढ़ती है।'

'यू आर राइट आंटी... असल में इसीलिए तो मैं... मेरा मतलब मेरे साथ तो एक बार ऐसा हो चुका है।' कभी कभी हम अपने आप को रोक नहीं पाते और वह सब भी बाहर उछल आता है जिसे हम ख़ूब दबा दबा कर भीतर रखते हैं। औरत चाहती तो थी कि पूछे कि क्या हुआ था उसके साथ... पर यह दलदल है वह उसमें उतरना नहीं चाहती थी। लड़का भी सोच रहा था कि अगर पूछ ही लिया इन्होंने, तो, तो वह क्या बतायेगा...। क्या बतायेगा कि... असल में ग़लती किसी की नहीं थी। उस औरत ने तो नहीं कहा था कि वह कोई जवान लड़की है, वह तो उनकी पिक्चर प्रोफ़ाइल, आवाज़ और बातचीत से मान बैठा था कि वह बीस-बाईस साल की लड़की है, पर वह तो वास्तव में बड़ी उम्र की ब्याहता औरत थी। यह तो वह खुद ही था कि अपने ख़यालों में बैठी लड़की को उस औरत में देखने लगा था। इस बार भी कहीं ऐसा ही न हो, यही चैक करने के लिए आज बिना बताये ही इस लड़की से

मिलने चला आया था।

आख़िर इतनी कितनी मटर थी कि औरत छीले ही जा रही थी। सामने रखा बर्तन भर गया। औरत ने उसे दूसरे बड़े बर्तन में पलट दिया। तभी लड़की की नज़र एक कीड़े पर पड़ी, वह पहले बर्तन की पेंदी में चिपका था। हरे रंग का कीड़ा। 'हाऊ स्ट्रेंज, हरी मटर में हरा कीड़ा', उनके बीच जो चुप्पी पसर गयी थी उसे तोड़ने का मौक़ा मिला। 'यही तो कमाल है कुदरत का, मटर और कीड़े दोनों की मां वही है। उसके लिए दोनों बराबर हैं।' बात गहरी थी पर उन तीनों के पास उस गहराई में उतरने न तो टाइम था न इच्छा।

लड़की बर्तन को धोकर ले आयी। वह लगातार प्रयास कर रही थी कि वह सहज रहे जबकि वह अंदर से बेचैन थी। वही उस लड़के को घर लायी थी, उसने ज़्यादा सोचा समझा नहीं, सोचा तो केवल इतना कि उससे चोरी छिपे बात नहीं करनी। हालाकि वह ठीक ठीक नहीं कह सकती थी कि वे कौन सी बातें थीं जो उसे उससे करनी थीं। वे कौन सी बातें थीं जो उसके भीतर फंसी और अटकी रह जाती थीं। वे बातें कम से कम होमवर्क, क्लासवर्क, कॉलेज की इनफ़ोरमेशन से परे की बातें थीं। ये वे बातें थीं जिन पर वह बिना बात हंसना चाहती थी, मुस्कुराना चाहती थी, वे बातें जिनके साथ वह बह जाना चाहती थीं। ये वे बातें थीं जिनकी ज़रूरत तो थी पर वह ज़रूरत बतायी नहीं जा सकती थी। दुनिया इन बिना ज़रूरत की बातों की दुश्मन हुई जा रही थी। उसकी साईकोथेरेपिस्ट ने उसे बताया था कि उसे इन बातों के स्ट्रेस को रिलीज़ करना होगा। उसी ने कहा था कि दिमाग़ पर कोई बोझ मत रखो। जो भी हो अपनी मां से शेयर करो। जिनके बीच हम रहते हैं उनसे बचने और छिपने का प्रयास भीतर तनाव और दबाव पैदा करता है। जब लड़की अपनी थेरेपिस्ट से बात करती तो लगता जैसे कोई नर्म नर्म उंगलियों से उसके सिर की मालिश कर रहा है।

'इतनी मटर क्यों छील रही हो?' उसने मां से पूछा।

'आज मैं निमोना बनाऊंगी।'

'क्या??' लड़की चौंकी, पर लड़के के चेहरे पर कोई भाव नहीं आया।

'तुम लोग बनाते हो?'

'हां, आंटी, मेरी मॉम अक्सर बनवाती हैं।'

'तुम्हारी मां जॉब में हैं?'

'जी आंटी, नाईन टू फ़ाइव वाला जॉब, मॉम कुक को बताकर जाती हैं।'

'और घर, घर में कौन रहता है?'

'डैड घर पर रहते हैं, वो घर से ही काम करते हैं। ...ही इज़ फ्रीलांसर जर्नेलिस्ट, कभी-कभी टूअर पर जाते हैं तो मैं संभालता हूं।'

'हूं, तुम तो बहुत समझदार हो, हमारी टैडी तो कुछ नहीं करती।' कहकर लड़की की मां मुस्काई।

पर बदले में लड़की ने फिर अपनी बड़ी बड़ी आंखें दिखायीं। बाहर अंधेरा घिर आया था। सर्दियों में जहां पांच बजे से ही सूरज को भागने की पड़ जाती है और सात बजे तक तो रात काली चादर लपेट कर टुकुर-टुकुर ताकने लगती है। इस समय भी रात खिड़की से भीतर झांकने लगी थी।

लड़का एकदम से उठकर खड़ा हो गया।

'आंटी, मैं निकलता हूं... बहुत लेट हो गया हूं।'

'ठीक ठीक अच्छा लगा तुमसे मिलकर।'

लड़के ने जाते हुए औरत के पांव छुए तो वह अरे-अरे करते हुए अपने पैर हटाने लगी।

'मां, मैं अयान को बाहर तक छोड़कर आती हूं।' कहकर लड़की भी कुर्सी से उठ खड़ी हुई। बाहर निकलने से पहले उसने गैलरी की लाइट जलायी। छोटी सी गैलरी तेज़ रोशनी के बिखरने से जैसे अनावृत हो गयी। वहां का कोना-कोना चमक उठा। दरवाज़े के ठीक पीछे 'की-हैंगर' था। ख़ूब पुरानी जंग खायी चाबियों से लेकर चमचमाती छोटी बड़ी अनेक चाबियां वहां लटक रही थीं। जब लड़का वहां उनके पास से गुज़रा तो उसका ध्यान फिर से उस तस्वीर की ओर गया जो वहां लटकी थी। अचकन और चूड़ीदार पायजामा पहने एक उम्रदराज व्यक्ति लकड़ी की बड़ी सी मेज़ और कुर्सी पर बैठा आगे की ओर झुक कर ध्यान से कुछ लिख रहा था। शायद यह लड़की के किसी दादा-परदादा की फ़ोटो थी जिसे रंगीन बनवाया गया था। ख़ानदानी शान-ओ-शोकत वाली। उसने बाहर निकलते हुए लड़की से पूछा,

'वो किसका पोट्रेट है?'

'वो', लड़की ने इशारा किया। 'ही इज़ डा.आंबेडकर वर्किंग ऑन कॉन्स्टीट्यूशन' लड़की ने सहजता से जवाब दिया।

लड़के ने आंबेडकर की कई तस्वीरें देखी थीं, वह उन्हें पहचानता था, पर यह कितनी भिन्न छवि थी। वैसे ऐसा कितने ही दूसरे महापुरुषों के साथ भी है, उन्हें किसी एक ही तरह की छवि में क़ैद कर दिया गया है।

घर में औरत ने राहत की सांस ली। उसके लिए यह सब एक ऐसी परीक्षा की तरह था जिसमें बैठने से पहले उसने स्लेबस तक भी नहीं देखा था। उस पर शर्त भी यह कि उसे 'पास' होना था। उसकी बेटी किसी लड़के से सिर्फ़ इसलिए मिलना चाहती थी कि वह उसे अच्छा लगता था। यह 'अच्छा लगना' चारों ओर से खुला होने के बावजूद ऐसा बंद पड़ा था कि वह उसके भीतर घुस नहीं पा रही थी। हालांकि उसके भीतर घुसने की ऐसी कोई ज़रूरत भी नहीं थी। पर फिर भी वह उसके चारों ओर चक्कर लगा रही थी और लड़के के द्वारा उसके पैर छुए जाने से वह इतना ही समझ पायी थी कि यह 'अच्छा लगना' अगर हिंदी फ़िल्मों से प्रेरित है तो इसका अंत जहां होना है उसके लिए यह लड़का बुरा नहीं है। 'पर देखो न, टैडी अभी तक नहीं आयी'। वह आश्वस्त थी कि वह इस परीक्षा में पास ही होगी। उसका पास होना ज़रूरी है क्योंकि यह टैडी की परीक्षा थी। उसे अपने दिमाग़ पर कोई बोझ नहीं रखना है। औरत गर्म पानी से मटर धो कर अख़बार पर फैलाने लगी। जब लड़की वापस आयी तो वह चुप थी। यों अक्सर वह चुप ही रहती थी। पर औरत को लगा कि वह ज़्यादा चुप है। उसके भीतर हलचल होने लगी उसे लगा कहीं वह फ़ेल तो नहीं हो गयी।

(प्रिय पाठक गण कहानी यहां ख़त्म नहीं होती। पर आगे की कहानी आप लोगों को ख़ुद से आगे बढ़ानी है जिस भी दिशा में आप चाहें...।)

मो. 9910019108

कहानी

बेड नंबर दस

आशा 'मुक्ता'

उसने हाथ का कौर (निवाला) मुंह में डाला। निवाला नहीं मुट्ठी कहेंगे उसे। सामने पेपर प्लेट में पके हुए चावल के दानें दिख रहे थे। दाल सब्ज़ी तो नहीं थी, पर चावल का रंग मटमैला था। शायद उसने सबको एक ही साथ मिला लिया होगा। उसने और एक मुट्ठी मुंह में डाला और इधर-उधर नज़रें घुमायीं। नज़रों से लगा कि वह किसी को खोज रही थी या किसी से छुपना चाह रही थी ताकि कोई उसे खाते हुए न देख ले। मेरे सामने की कुर्सियों की क़तार में एक पर वह भी बैठी हुई थी। अन्य कुर्सियों पर कई अन्य लोग बैठे थे। कुर्सियां एक दूसरे से चिपकी हुई थीं, पर लोग दूर दूर नज़र आ रहे थे। कोरोना वाली सोशल डिस्टेंसिंग थी या लोग ही कम थे, समझ नहीं पायी मैं, क्योंकि कई साये अग़ल-बग़ल भी दिख रहे थे। मैंने सोच लिया कि वे एक ही परिवार के होंगे। उसने एक मुट्ठी और मुंह में डाला और बायें हाथ से काले रंग के बैग में परेशान सी कुछ ढूंढ़ने लगी। अगले ही पल फ़ोन हाथ के साथ बैग से निकलकर कान से चिपक गया। पहले होंठ बिसूरे, फिर आंखें गीली हुईं। दाहिने हाथ के पिछले हिस्से से वह आंखों को तब तक पोंछने की कोशिश करती रही जब तक फ़ोन कान पर चिपका रहा। बीच बीच में होंठ भी गोल होते हुए दिख रहे थे और फुसफुसाहट की आवाज़ भी आ रही थी, पर बात समझना मुश्किल था। यहां भाषा और दूरी दोनों ही मेरी जिज्ञासा बढ़ा रहे थे। मैं जब तक कुछ समझने की कोशिश करूं तब तक फ़ोन कान से निकलकर वापस बैग में क़ैद हो गया और हाथ चावल को फिर से गोल करने लगा। उसने एक मुट्ठी और मुंह में डाला। तभी पीछे के गेट से एक स्त्री आयी और बग़ल की ख़ाली कुर्सी पर बैठ गयी। हाथ अनायास ही रुक गये उसके। कुछ बोला उसने पर मैंने सुना नहीं। आंखों की बूंदें गाढ़ी होती देखती रही मैं। उसने पेपर प्लेट को मोड़ा और कुर्सियों के बाद कोने से सटे डस्टबिन में डाल आयी, मानो किसी अनचाही वस्तु से निजात पा ली हो। बैग से कपड़ा निकालकर तत्काल हाथ भी पोंछ लिये। मुड़ी सिकुड़ी चुन्नी ने आंखों को सुखाने में मदद की। वह उससे तब तक आंखें पोंछती रही जब तक आंसू आंखों में न सिमट गये।

यह वही स्त्री थी जिसने कल मुझे मेरा फ़ोन चार्ज करते हुए देख तेलुगु में पूछा था, 'मैडम कोंचम चार्जर ईस्तरा? फ़ोन डिस्चार्ज अईंदी।' जिसके अर्थ का अनुमान मैंने इन शब्दों से लगा लिया था कि 'मैडम फ़ोन का चार्जर देंगे क्या, फ़ोन डाउन है मेरा।' और मैंने उसके हाथ में फ़ोन देखकर टूटी-फूटी तेलुगु में जवाब दिया था जिसका अर्थ था कि 'यह आइफ़ोन का चार्जर है आपके फ़ोन में नहीं आयेगा।' उसने अपना फ़ोन देखा, फिर मेरा चार्जर और पलट कर लाचार सी अपनी कुर्सी पर बैठ गयी थी। उसके बग़ल में एक अधेड़ उम्र का पतला सा आदमी भी था जिसका फ़ोन पहले ही चार्जिंग पर लगा हुआ था और जिसे वह बार-बार उठकर देख रहा था। फ़ोन रिंग होने पर भी बग़ैर चार्जर से निकाले वह कान में लगा लेता। एक प्लग पर उसने पूर्णतः अपना अधिकार जमा लिया था। इसकी

वजह का अनुमान मैंने उसकी मजबूरी से आंक लिया जो फ़ोन में बैट्री की ख़राबी हो सकती थी।

मेरा मानना था कि अपोलो जैसे हॉस्पिटल के आई सी यू वार्ड के वेटिंग हॉल में सिर्फ़ 'बड़े लोग' यानी अमीर लोग ही होते हैं। वह बड़े लोगों में थी या नहीं मुझे नहीं पता, परंतु उम्र 40 के आसपास रही होगी। वहां बैठे अधिकतर चेहरे शांत और आंखें उदास थीं। हवा में एक अजीब सा भारीपन होता था जिसे मिलने जुलनेवालों की सांत्वना भी हल्का नहीं कर पाती थी। हंसी कभी कभार यदि उधर से गुज़र भी जाती थी तो खोखलेपन को नहीं छिपा पाती थी। पिछले दो दिनों से उसके हावभाव को मैं पढ़ने की कोशिश कर रही थी। एक दिन साड़ी और दूसरे दिन सलवार क़मीज़ में नज़र आयी थी वह। ऐसे कई लोग वहां थे जो किसी अपने के लिए या अपनों की वजह आये हुए थे। कई बार उनके यहां होने की वजह जानने की उत्सुकता होती। मन करता कि पूछ लूं कि उनके अपने किस स्थिति में हैं वहां। परंतु तथाकथित मानसिकता कि दूसरों के प्रॉब्लम में टांग अड़ाना असभ्यता की निशानी है, मैं चाह कर भी पूछ नहीं पायी। शायद सभ्यता का नया पाठ उसने नहीं पढ़ा था और पूछ लिया था मुझसे, तेलुगु में ही, 'कौन है यहां पे आपका...' मैं जवाब दे पाऊं उससे पहले ही उसने एक सवाल और दागा, 'क्या हुआ है?' मैंने कह दिया कि एक्सीडेंट हुआ है मेरे भाई का।

'मेरे पति का भी एक्सीडेंट ही हुआ है।'

यह कहकर अनजान के मामले में टांग अड़ाने की असभ्यता से बचा लिया था उसने मुझे। अब मैं आगे और जानने को उत्सुक थी। वह कहती गयी कि उसके पति के सिर में चोट लगी है। रात को सेक्यूरिटी की ड्यूटी करके वापस पैदल आते वक़्त किसी डी.सी.एम. वाले ने ठोक दिया था उसे। डॉक्टर कहते हैं दारू पीया हुआ था। कितनी बार समझाया पर सुने तब न, भगवान जाने दारू कौन बनाया। दारू के लिए मरद लोग किसी को भी दाव पर लगा सकता है। इसने तो अपनी ज़िंदगी को ही दाव पर लगा दिया। दो दिनों से न्यूरो आइ.सी.यू. में है और अभी तक बेहोश पड़ा हुआ है.., 'कहते हैं ऑपरेशन करना पड़ेगा मैडम, 4 लाख रुपया जमा करने को बोल रहे हैं, कहां से लाऊंगी मैं...।' कहते हुए कई बार उसकी आंखें भरी थीं और जबान भी लड़खड़ायी थी। तभी फ़ोन बजा था उसका और वह बग़ल हो गयी थी।

अगले दिन फिर देखा था मैंने उसे। मुझे लगा कि वह फिर मुझसे बात करेगी। अपनी कथा और वर्तमान के हालात मुझे बतायेगी। मेरा हाल चाल जानना चाहेगी। पर उसने कुछ नहीं पूछा। आंख की पपनियां सूजी हुई थीं। आई.सी.यू. के सेक्यूरिटी से उसने कुछ पूछा था, पर उसने मना कर दिया था। आकर बैठ गयी थी चुपचाप। दोनों पैरों को मोड़कर समेट लिया था कुर्सी में। कई लोग आते रहे और मिलते रहे। कभी सूखी, कभी गीली आंसुओं के बीच मुस्कुराहटें भी निकलती रहीं।

हमारे समाज की सबसे बड़ी विशेषता है कि कुछ करे या न करे, पर सांत्वना देने में हम कभी पीछे नहीं रहते। छोटी मोटी बीमारियां सांत्वना से ही ठीक हो जाती हैं। एक मरीज़ के पीछे पूरा ख़ानदान हमें हॉस्पिटल में नज़र आता है। ठीक उसी तरह जैसे एक को छोड़ने के लिए कई लोग स्टेशन पर इकट्ठा हो जाते हैं। जीवन के आख़िरी क्षण तक हम साथ देने में विश्वास करते हैं। यह बात अलग है कि आपसी मनमुटाव भी कम नहीं होते। दोस्त को दुश्मन बनते भी देर नहीं लगती। प्यार और नफ़रत दोनों की चरम सीमा हम देख सकते हैं यहां। सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ज़रूरत के वक़्त दुश्मनी को हावी नहीं होने देते और मदद के लिए सामने खड़े हो जाते हैं। अपनी परवाह तो हम करते ही हैं दूसरों

की ख़बर लेना भी नहीं भूलते। आज के युग में पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित होकर और न्यूक्लीअर फ़ैमिली के नाम पर हमारे यहां भी लोगों की दुनिया सिमटने लगी है। मानसिकता ऐसी हो रही है कि दूसरों की खोज ख़बर रखने वालों को दूसरों की ज़िंदगी में टांग अड़ाना कहा जाने लगा है। जहां ऐसी मानसिकता की हवा नहीं लगी है उन्हें छोटी सोसाइटी माना जाता है। शायद वह भी इस तथाकथित छोटी सोसाइटी से ही संबंध रखती थी।

अगले दिन फिर से मेरी नज़र उसे ढूंढ़ने लगी। आई.सी.यू के वेटिंग एरिया से अस्पताल के मेन गेट से लेकर इमर्जेंसी वार्ड के द्वार भी साफ़ नज़र आते थे। वहां बैठनेवालों के लिए दिन भर एम्बुलेंस का सायरन सुनना, मरीज़ों का उतरना और चढ़ना देखना मजबूरी सी बन जाती है। उन्हें देखकर आप स्वयं को भाग्यशाली समझते हैं या बदक़िस्मत, यह आपकी वर्तमान परिस्थिति पर निर्भर करता है। मस्तिष्क सकारात्मक और नकारात्मक सोचों के बीच का द्वंद्व अनवरत झेलता रहता है। मरीज़ का स्वस्थ होकर बाहर निकलना मन में आशा और संतोष जगाता है। मेरा भी मन कुछ ऐसी ही परिस्थिति से गुज़र रहा था। वेटिंग एरिया में बैठे-बैठे मैं ढूंढ़ने लगी थी उसे हर उस मरीज़ के साथ जो गेट से बाहर निकल रहा था। मन में सवालों का तांता लगा हुआ था कि क्या हुआ होगा उसके पति को? क्या पैसे का जुगाड़ कर पायी वह? सर्जरी हुई उसकी या नहीं हो पायी? फिर दिमाग़ ने दिल को समझाने की कोशिश की कि अपोलो जैसे अस्पताल में जो आता है वह कुछ न कुछ जुगाड़ कर के ही आता होगा। जुगाड़ नहीं होगा तो सरकारी अस्पताल में जायेगा, यहां आयेगा ही क्यों। मानसिक द्वंदों के बावजूद जब मन किसी नतीजे पर नहीं पहुंचा तो ख़ुद्दारी को बग़ल में रखकर मैंने आई.सी.यू. के सेक्युरिटी से पूछ ही लिया,

'वो एक लेडी आयी थीं जिनके हसबैंड का एक्सीडेंट केस था और जो आई.सी.यू में थे, वे शिफ़्ट हो गये क्या? क्या हुआ उनका? सर्जरी हुई ?' मैंने अवसर देखकर कई सवाल गाड़ दिये।

क्षण भर के लिए सेक्युरिटी ने मुझे ऐसे देखा मानो कह रही हो 'इतनी भी क्या पड़ी है इन्हें और मुझे कोई और काम धाम नहीं है जो सबका हिसाब रखती बैठूं? इतने सारे पेशेंट हैं, आईसीयू भरा पड़ा है, ऐसे में किसी एक के बारे में याद रखना आसान है क्या?' परंतु वह मुझे भी कई दिनों से चक्कर मारते हुए देख रही थी, इसलिए उसे मेरे साथ कठोर होते शायद नहीं बना। उसने इतना कहा, 'क्या करते जान के मैडम, एक तो हमें अलाउ ही नहीं है कि मरीज़ के बारे में किसी को बतायें और यदि बता भी दूंतो आपको तकलीफ़ ही होगी। नक्को पड़ो इन झंझटों में।'

तभी एक वार्ड ब्याय तेज़ कदमों से हांफते हुए आया। 'बेड नंबर 10' सेक्युरिटी को कहा। सेक्युरिटी ने झट से दरवाज़े के बग़ल वाली स्विच को दबाया और आधा खुला हुआ दरवाज़ा पूरी तरह से खुल गया। लंबे से कॉरिडोर में लिफ़्ट से एक स्ट्रेचर उतरा। दो लड़के आगे और दो लड़के पीछे से उसे ढकेल और खींच रहे थे। एक वार्ड बॉय सिरहाने की ओर से ऑक्सीजन का सिलिंडर पकड़कर पहिये के सहारे चला रहा था और एक इंसान बैलून को फुलाकर फेफ़ड़े में हवा भरने की कोशिश कर रहा था। सफ़ेदी में लिपटा शरीर का सिर बैंडेड से पूर्णतः ढंका हुआ था। आधा चेहरा भी पट्टियों के घेरे में था। मैंने प्रयास नहीं किया उसे पहचानने का। तभी सबके पीछे हाथ में फ़ाइल का झोला लटकाये हुए वह चलती हुई दिखायी पड़ी। चेहरा मास्क के पीछे था, पर आंखों में ख़ुशी साफ़ झलक रही थी। इस

ख़ुशी का अंदाज़ा मैंने ऑपरेशन की कामयाबी से लगा लिया और मेरे मुंह से अनायास ही निकल पड़ा, 'थैंक गॉड!' मेरे हावभाव देखकर सेक्युरिटी को बर्दाश्त नहीं हुआ या वह मुझे ख़ुशफ़हमी में नहीं रखना चाह रही थी, भगवान जाने। उसने धीरे से कहा, 'ऑपरेशन तो हो गया मैडम लेकिन पेशेंट कोमा में है। कब बाहर निकलेगा कोई ठीक नहीं है। डॉक्टर साहब लोग बात कर रहे थे। कोमा का पेशेंट ज़िंदा लाश से अधिक नहीं होता आपको पता ही होगा'। मैं देखती रह गयी अवाक् सी उस स्त्री को फिर से जो शराबी पति को ज़िंदा लाश के रूप में पाकर निहाल हुई जा रही थी।

मो. 9908855400

बोली-भाषा रचनाशीलता

अवधी, बुंदेली, भोजपुरी कविताएं

पांच अवधी पद

विवेक निराला

1

माधौ! असंसदीय मत बोलो।
भजन-कीर्तन जाप करौ जब, राम कहे मुंह खोलो।।
जुबां-केसरी फांक के, सच बोलै से पहिले तौलो।
जिसका देखौ पलड़ा भारी, उसी के बस तुम हो लो।।
कोरस के दिन बीते केशव, बैठ गाइये सोलो।
जहां भी ख़तरा दीखै साथी, तुरत वहां से पोलो।।
पंक से पूरित हाथ तुम्हारे, गंगा जल से धो लो।
दुसह दुक्ख दक्षिण में देखे, मन हल्का हो, रो लो।।
एक छोड़ सब हैं प्रतिबंधित, कौन रंग को घोलो।
नक्सल समझे जैहौ माधव, मधुबन में मत डोलो।।

2

ऊधौ पत्रकार टी.वी. के।
नहीं कबहुं मनभावन मीठे, ये हैं फल कीवी के।।
अलग धजा धारे शोभित हैं, न्यूज रूम के एंकर।
ज्यों सड़कन का रौंदत आवत, वे डीजल के टैंकर।।
टी.वी. पै डिबेट करवावैं, चार मनइ बइठाये।
औरन का बोलन नहिं देहैं, अपनिन आप चलाये।।
कुछ सच्चाई दाब के राखैं, कुछ झूठन का भाखैं।
सब करुवाहट हमैं परोसैं, स्वयं मधुर फल चाखैं।।
चीख के बोलैं, नक्शा मारैं, भेजें तगड़ा सी. वी.।
बुद्धि-बिबेक ताख पर रक्खे, नाम के बुद्धीजीवी।।

3

ऊधौ! अंध-समर्थक आये।
सब बिसराय डार, द्रुम, पल्लव, जड़ देखे मुस्काये।।
तर्कातीत, बुद्धि सब त्यागे, ऐसों निपट अभागे।

सब स्वतंत्र ह्वै नाचत भूले, बंधे भये हैं धागे।।
अति उजड्ड, उडगन की नाईं पिछवाड़ा चमकावैं।
जो इनसे शास्त्रार्थ करै सोइ, लै लाठी धमकावैं।।
तारी दै दै, गारी दै दै, जब मीडिया मं आवैं।
तब जानौ पूरे त्रिभुवन मं, भारी भक्त कहावैं।।
हाथ धोय के पीछे परिगे, इनसे राम बचाये।
सूधी राह कबहुं नहिं इनकी, कुटिल राह पर धाये।

4

साधो! अब सब हाट बिकैहैं।
अब गौरव नवरतन हमारे, निजी हाथ मां जैहें।।
बजट-सजत सरकारी घाटा, एअर इंडिया टाटा।
कर्ज़ा काटा तब घर लाये, तेल, नून और आटा।।
महंगाई की आग लगी है, कइसेव जियइ न देय।
अपनइ मांस हमारो खाना, अपनइ रकत है पेय।।
मुश्किल में हैं प्राण हमारे, कइसे जान बचैहें।
जे निरदोष, निरपराध हैं, वे सब मारे जैहें।।

5

ऊधौ! कर दी खाट खड़ी।
एक समस्या को हल करिहैं, दुसरी आन पड़ी।।
तुम तौ आये जनता सौं करि, बातैं बड़ी-बड़ी।
अच्छे दिन कब तक आवैंगे, दिल मं फांस गड़ी।।
महंगाई को छुट्टा छोड़्यो, मुश्किल आन पड़ी।
सांस लेन मं टैक्स अब परिहै, जिनगी भई कड़ी।।
स्विस बैंक मं रूपया बढ़िगौ, सूची नयी खड़ी।
तुम तौ पूरा विश्व भ्रमण करि, मारत छड़ी-छड़ी।।
पूंजीपतियन के पालक हौ, परजा आंखि गड़ी।
हिंदू राष्ट्र बनै कब भारत, देखत घड़ी-घड़ी।।

मो.94152899529

पांच अवधी कविताएं

अमरेंद्र अवधिया

1

कवन सपेरा बीन बजावै
न्याव, प्रसासन, बिधि-बिधायिका : सबका नाच नचावै
जाति-धरम चिनगी परचावै, धूं-धूं लपट उठावै
बेकारन क भांगिक गोला, टूका दयि बहलावै
बिल-बैठे फेटार कुलि निकसैं, लावा-दूध चढ़ावै
राग-जम्हूरी, पबलिक झूमै, ओट पै ओट गिरावै

2

मजहब हुवै वायरस गज्जब
एंटी-वायरस सबै लुल्लहयं, यहु एतना हय बेढब
पूरा सिस्टम करप्ट होइगा, फेलफार मेट करतब
ग्लोबल मौज – बजारू खेला, भकभेलर हयं हम सब

3

प्रभुजी, तुम भक्तन क कूटौ
सबद नगाड़ा खोपड़िया मा, पीटौ पीटौ पीटौ
उर भीतर के अंधकार पै दामिनि बनिके टूटौ
आंखन के जालन के ऊपर लिये खरहरा छूटौ

4

काहे?
काहे बात बुरी लागत है
काहे चुन्ना अस काटत है
काहे तोहरे मन कै बोली
काहे तुम्हरी अस चाहत है
राम दिहिन हमहू क भेजा
भेजा है तौ कुछ स्वाचत है

आफत कवन दिहे बा आखिर
जे केउ अलग राय राखत है
लियै'क यक न दियै'क दुइ है
फिर काहे आंती फाटत है
5

कइसे उपजा कोढ़ खाज मा

राम दुखी जउने समाज मा
आग लगै वहि रामराज मा
राम कै चोला ओढ़े रावण
बोलय रामै के अवाज मा
सबही करै परस्पर नफरत
बिख फैला है मनमिजाज मा
बाढ़े लंपट, खल, उत्पीड़क
धै धमके कुलि राजकाज मा
टैम मिले तौ तुमहू सोचेव
कइसे उपजा कोढ़ खाज मा

मो.9971437319

पांच अवधी कविताएं

शैलेंद्र कुमार शुक्ल

1

हमरे पास टाइम नाय

खेते मा बिया परे
टपर टपर मेह झरे
पढ़ परि पावै ना
धीरे धीरे हर चले
केहेन हम गदोरे ते
माची तनिक थमि लेउ
बोलि परे पहिलिन ते
हमरे पास टाइम नाय

आसाढ़े कै मास चढ़े
सरपत कै फूस धरे
छप्पर कै डोल बंधे
कैंतिन कै गूंथ लगे
संझा भय संझा भय
बीस ठे जवान जुरे
केहेन हम गदोरे ते
कक्कू तनि आय जाउ
बोलि परे अनमन हुइ
हमरे पास टाइम नाय

धान कटे खलियन मा
रासि देखि जिउ सिहान
पुवरा कै ढूहन पै
उलरति गदेलन का
अबकिन ते पेटु भरी
अम्मा असीस दिहिन

लहड़ू मा नाजु भरा
दादा दुइ मुठी फिरि
पुरीखन कै नाव दिहिन
डगर घाट चहला मा
अंदि गा जो पहिया तनि
केहेन फिरि गदोरे ते
मददि तनि करौ आय
बोलि परे लकलक हुइ
हमरे पास टाइम नाय

सालु समउ बीति गा
जीवन सबु रीति गा
मनइन कै मान बचे
धनइन कै बान गंसे
यादि कीन जाति रहा
जेहिकि जो आनि रहै
चारि छे साल बादि
मनई एकु बोलि परा
कहां हैं गदोरे हो
समय फिरि डहुंकि परा
उनके पास टाइम नाय
हमरे पास गदोरे नाय.

2

साहेब मारौ हमरे जूता

बड़ी जाति के हम गोरू हन तुम हमरे हौ नेता
जुग की रीति बंधी खूंटा मा आवउ काटौ फीता
मारौ लट्ठ खैंचि के हमरे बमकि बमकि डिडियाई
रोजगार तुम देहेउ न काका भभकि भभकि लौ गाई
हत्या करौ रेप कइ डारौ बल भरि लूटौ हमका
बमबम बोलि बिराजौ राजा मत पैहौ तुम सबका
बप्पा'क खेतु चरावो सड़वन फिरि बांटौ तुम रासन
हिंदू हन हम पक्के वाले बहुत सही है सासन
बहुत सही हौ काका हमरे बहुत सही सिंघासन

हम हन गदहा का करिहौ तुम हमका दैके आसन
खेती छीनौ रोजी छीनौ हम उचकुलिया जनता
बहुत खुसी है फिर जितिहौ तुम मारि'के हमरे जूता।

3

साहेब हमरे मारौ लाठी
हम हिंदू तुम ठाकुर राजा कहिकी मति है नाठी
हम सिकार तुम भूंखे भेड़हा हम तुम दूनौ राजी
तुम हमका कसिके रपटाओ हम धीरे तें भागी
लगन हमारि तुमार महूरत दूनौ अबकिन जागी
मासु हमार जीभ पर तुमरी केतना है बड़भागी
रकत हमार गरब तें गाभिन रजऊ हैं संन्यासी
दयाहीन तुम धरम धुरंधर चेला सत्यानासी
मुड़िया जेहिके द्वार पै बैठे घाघ कहैं सब नासै
हम बैठारेन सिंघासन पै सगरो राज बिनासै
राजा भोगी जनता रोगी साहेब हनौ लुकाठी
हाय हाय कै कोरस सुंदर हमरे मारौ लाठी

4

ककुवा मदन दुंदुभी बाजै
तबला बजै बजै हरमुनिया भड़ुवा रचि रचि साजै
बौरे बाग रासलन करे जेहिमा सभा बिराजै
महिपालन के जमघट लागे छप्पन नेउज नेवाजै
ओठन लाली आंखिन सुरमा दहिजरवा पर लाजै
कामदेउ धनुही लै धाये पांच बान ते राजै
तापस भेस वणिक कै समधी दिव्य नियोजन गांजै
नैतिकता की छूति परोसै घिसि घिसि बासन मांजै
निजता निजीकरण पै मोही लइयन पइयन भाजै
पूंजी सरहज बिलगु न मानै सबका करै पराजै
लोभी परम मनोज लजावन फूटि बल्टिया रांजै
मी टू होय दलिद्दर झूलै फगुवा कहि पर नाजै
राष्टबाद के सपन सुहाने मदन दुंदुभी बाजै

5

बापू द्याखौ आवा बसंतु
सोचित मनई अब रही कहाँ चौगिरदा डटे लफंगा हैं
घर के भीतर घर के बाहर सब गांव सहर मा दंगा हैं
सब डहुंकि रहे हैं सड़वा अस खेतन मा फरी उदासी है
भूखे हैं पेट गरिबवन के खेती चरिगे सन्यासी हैं
दुखिया सुलगति हैं कंडा अस न ढूंढ़े पावै आदि अंतु
बापू द्याखौ आवा बसंतु

अब सत्य मरति है मौके पर बेड़िन मा कसी अहिंसा है
बाजार गरम है झूठ क्यार साहेब की बड़ी प्रसंसा है
का है मजाल जो बोलि देइ साहेब यह नीति नीकि नाहीं
घामे मा तपिगे रामगुनी चाकर चिहुंकैं छाहीं छाहीं
जल्लाद बनाये फंदा है फांसी देई कहिका महंतु
बापू द्याखौ आवा बसंतु

वै चुरुवा भरि पानी ढूंढ़इं बूड़ै का जिनका नहीं ठौर
आगी मूतति माहिल होरे बगुला भगतन का करौ गौर
जिनकी अब पुलिस मलेटरी है वै सब कायर बलवान भये
बप्पा का पहिले दागि दिहिन अम्मा के ठेकेदार भये
जय ब्वालौ भारत माता की चिंघारि रहा है नवा संतु
बापू द्याखौ आवा बसंतु

बेकार जवानी हुइगै है बुढ़वन की मरगति बिगरि गयी
हैं नीति परायण महाराज उनकी सद्गति लौ संभरि गयी
लरिका सब भये कुपोषित है कक्का उनके सरताज भये
जिनके मन तनकिउ दया नहीं उइ धरम के पहरेदार भये
हमते तुम फिरि फिरि पुछेउ ना यहु विश्वगुरु है कौन जंतु
बापू द्याखौ आवा बसंतु

कन्फूजन तुमका भले होय ई तौ सूधै निर्णायक हैं
काटौ तौ निकरै खून नहीं यै हिंसा मा सब लायक हैं
माघै मा फागु मचाय देइं इनके भेड़हा हैं सांति दूत
बखरी मा भरा अंधेरु खूब यै सोधि रहे हैं नवा भूत
बघवा छेगरी का पोटि रहा कहि रहा बनति है बनाबंतु
बापू द्याखौ आवा बसंतु

सब लुच्चा लिंचिंग करति हियां सरगना बकैती छांटति है
जिन के बल पर सरदार भये उनका भीतर ते बांटति है
लाठी भांजति है पुलिस खूब सह पावति खूब लफंगा हैं
मनई की कौनिउ खैर नहीं सगरे बदमसवा चंगा हैं
लौंडा लहराय रहे कट्टा थर्राय रहे हैं दिग दिगंतु
बापू द्याखौ आवा बसंतु

मो.7498653618

पांच बुंदेली कविताएं

महेश कटारे सुगम

1

गरे गरे तक संकट हो गये
कछू आदमी खिलकट हो गये

बोझ बढ़ौ जिम्मेदारी कौ
नेंचे दब कें सिलपट हो गये

परौ बखत कौ ग़ज़ब रपेटा
दिल दिमाग़ सें जापट हो गये

नयी उमर में कुजनें का भऔ
पतौ नईं परौ चटपट हो गये

डग डग पै आफत के ठांड़े
बड्डे बड्डे जमघट हो गये

मौड़ा भये कमावे वारे
सो आंखन सें औलट हो गये

राजनीत की जेई खासियत
सुगम सीख कें छाकट हो गये

(खिलकट = अविश्वसनीय, सिलपट= समांतर, रपेटा = मार, जापट=लकवाग्रस्त,
चटपट = अकाल मृत्यु, औलट = ओझल, छाकट = बदमाश)

2

राम आये ते बर्राटन में

धनुष बान लै कें हाथन में

भौत दुखी मुंइयां उतरी ती
अंसुआ भरे हते आंखन में

कै रये ते ई राजनीति नें
हमें लपेटौ है बातन में

रैयत तौ भूखन मर रई है
नेता बीदे गर्राटन में

बिना छुकी तिरकारी खा रये
भक्त हमाए कैउ गांवन में

कित्ती मुतकी चिकनई बारत
दिया, जग्ग के पाखंडन में

श्रद्धा कौ एक दिया भौत है
जले प्रेम सें जो आंगन में

अहंकार की बास भरी है
सत्ता के हर सिंहासन में

(बर्राटन = सपना, गर्राटन = मद)

3

मरनें है तौ मरौ कोउ खों का करनें
जो करनें सो करौ कोउ खों का करनें

जैसी करनी करी बिना सोचें, समझें
भन्ना ऊ कौ भरौ कोउ खों का करनें

काटे पांव कुल्हारी सें खुद नें अपने
वैसाकी लयें फिरौ कोउ खों का करनें

जै जै कार करौ झूठन, बदमासन की
पके बेर से झरौ कोउ खों का करनें

पकर उंगरिया कोंचा उननें पकरौ है
पकरा दो अब गरौ कोउ खों का करनें

भरे कुआ में, चाय बाउरी में डूब
सुगम इतै सें टरौ कोउ खों का करनें

4

करम सबई हैं कारे उनके
लग रये हैं जैकारे उनके

सबरे गुंडा, चोर लुटेरे
हैं आंखन के तारे उनके

भौत भूभरा मूतत फिर रये
संगै रैवे वारे उनके

जित्ते चमचा बने फिरत्ते
हो गये वारे न्यारे उनके

रौब दौब में काम होत हैं
सबके सब अबढारे उनके

बातन में कैवे के लानें
सबरे भैयाचारे उनके

पर्दा के पीछें हो रये हैं
काम सबई तौ कारे उनके

कुजनें कित्तन के घर फूंकत
नफरत के अंगारे उनके

नाच रंग में डूबे रत हैं

संजा और सकारे उनके

अबकी सें जनता कर दैहै
पिछले सबई चुकारे उनके

सुगम पुलस के ऊंचे अफसर
बने अबै रखवारे उनके

(अबढारे = अपने आप)

5

पथरा मारौ खून ना निकरै का मतलब
जी पै हंसौ न ऊखों अखरै का मतलब

कुआं खोदवै, पसी बहावै, दुख सैवै
वौई न पीवै, वौई न सपरै का मतलब

जोतै, बखरै, बोय, पजावै फसलन खों
वौई न खावै, वौई न अफरै का मतलब

सोंज, मौज स्वारथ की जल्दी टूटत है
हड़िया फूटै, कढ़ी न बगरै का मतलब

मूरख सें दुख रोओ खोओ अपने नैना
कैवौ सुनवौ भार में पबरै का मतलब

फूल मार कें घाव करत हैं कवि शायर
कै लेवें और कोउ न बिफरै का मतलब

है कैसौ कानून करत है मौ देखी
होय फरारी पुलिस न पकरै का मतलब

बड्डे बड्डे विज्ञापन बड्डी बातें
बुरई सोच के पंख न कतरै का मतलब

मो. 9713024380

पांच भोजपुरी कविताएं

प्रकाश उदय

1
चुप्पे-चोरी

उड़े खाती चिरईं के पांख
बुड़े खाती मछरी के नाक लेब
उड़े-बुड़े कुछुओ के पहिले
चुप्पे-चोरी चारो ओरी ताक लेब

चुप्पे-चोरी बदरा के पार से
सउंसे चनरमा उतार के
माई तोर लट सझुराइब
चुप्पे-चोरी लिलरा में साट देब

भरी दुपहरी में छपाक से
पोखरा में सुतब सुतार से
माई जोही , जब ना भेंटाइब ---
रोई , ना सहाई जो , त खांस देब

आजी खाती सुरुज के जोती
सखी खाती पाकल-पाकल जोन्ही
भइया खाती रामजी के बकरी ---
चराइब , दूगो चुप्पे-चोरी हाँक लेब

बाबू चाचा मारे जइहें मछरी
हमरा के छोड़िहें जो घरहीं
जले-जले जाल में समाइब ---

मछरी भगाइब , खेल नास देब

दीदी के देवरवा ह बहसी
कहला प मानी नाहीं बिहंसी
भउजी के भाई हवे सिधवा ---
बताइब, जो चिहाई, त चिहाय देब

2

हाइयो से हाऽई

तन हाई तन हाई त न हाऽई
मन हाई मन हाई म न हाऽई
हाइयो से हाई...हाइयो से हाऽई...

चाटत रहल जे
माथा हरमेसे
चलि देले बाटे से
बेटा परदेसे
जाई, कमाऽई... हाइयो से हाऽई...

पढ़िहें कलटरी अब
बबुआ के भाई
बबुआ के दिदिया ना
दब के बतियाई
बबुआ के माऽई... हाइयो से हाऽई...

हमहूं रहब हो
भुंइहरवा लेखा
चाभब मलाई, हो ...
बाभनवा लेखा
ठानब ठकुराऽई... हाइयो से हाऽई...

3

देव-दुख
(खास काशी-विश्वनाथ के नांवे)

आवत बाटे सावन , शुरू होई नहवावन
भोला जाड़े में असाढ़े से परल बाड़े
एगो लांगा लेखा देह , राखें राखे में लपेट
लोग धो-धा के उघारे प परल बाड़े

ओने बरखा के मारे , गंगा मारें धारे-धारे
जट पावें ना सम्हारे , होत जाले जा किनारे --
'शिव-शिव हो दोहाई
मुंह मारीं सेवकाई'--
ऊहो देबे प रिजाइने अड़ल बाड़े

बाटे बड़ी-बड़ी फेर, बाकी सबका से ढेर
हई कलसा के छेद, देखऽ टपकल फेर --
'गउरा धउरऽ हो दोहाई'
आ त -- ढेर ना चोन्हाईं --
अभी छोटका के धोए के धयल बाटे'

'बाडू बड़ गिर्हिथिन ,खाली लइके केफिकिर...'
'बाड़ऽ बापे बड़ नीक ,खाली अपने जिकिर...'
'बाडू पथरे के बेटी...'
'बाटे जहरे नरेटी...'
बात बाते-घाते बढ़त बढ़ल बाटे

सुनि बगल के हल्ला , ज्ञानवापी में से अल्ला
पूछें,'भइल का ए भोला,महकइलऽ जा मुहल्ला
एगो माइक बाटे माथे
एगो तोहनी के साथे
भांग बूटी गांजा फेरू का घटल बाटे ?!'

दूनो जाना के भेंटाइल, माने दुख दोहराइल
ई नहाने नकुआइल, ऊ अजाने अंउजाइल

इनके लागेला सोमार
उनके जुम्मा के बोखार
दुख कहले-सुनल से घटल बाटे

आवत बाटे सावन , शुरू होई नहवावन
भोला जाड़े में असाढ़े से परल बाड़

4

काहे खाती

बाता-बाती ठकुर-सुहाती
काहे खाती
काऽहे खाऽती...

की त तोहरे में मिल जाईं
खिलऽ खिलीं, हिल्लऽ हिल जाईं
ना त तोह से लड़-भिड़ जाईं
तू छेड़ऽ, हम छिड़-छिड़ जाईं

होखे किच-किच दिन्ने-राती
काहे खाती
काऽहे खाऽती...

तू गरियवलऽ हम गरियवलीं
फरियावे चललऽ फरियवलीं
कवन-कवन गारी दिहलीं जा
कइसे-कइसे फरियवलीं जा
बान्हि के रखले राखीं गाँती
काहे खाती
काऽहे खाऽती...

की तू रोइबऽ हमरा गइले
की हम रोइब तहरा गइले
मन भ मन प धइले-धइले
जिनिगी बीते फइले-फइले

डाहत आपन-आपन छाती
काहे खाती
काऽहे खाती

5

तनी जगइहऽ पिया

आहो-आऽहो...
रोपनी के रंउदल देहिया सांझहीं निनाला
तनी जगइहऽ पिया
जनि छोड़ि के सुतलके सुती जइहऽ पिया

आहो-आऽहो...
हर के हकासल देहिया सांझहीं निनाला
तनी जगइहऽ धनी
जनि छोड़ि के सुतलके सुती जइहऽ धनी

आहो-आऽहो...
चूल्हा से चउकिया तक ले
देवरू-ननदिया तक ले
दिनवा त दुनिया भर के
रतिए हउए आपन , जनि गंवइहऽ पिया
धइ के बंहिया प माथ , बतियइहऽ पिया

आहो-आऽहो...
घर से बधरिया तक ले
भइया-भउजइया तक ले
दिनवा त दुनिया भर के
रतिए हउए आपन, जनि धनी
धइ के बंहिया प माथ, बतियइहऽ धनी

आहो-आऽहो...
दुखवा दुहुरवला बिना
सुखवा सुहुरवला बिना
रहिए ना जाला, कि ना !

कइसन दो त लागे , जनि संतइहऽ पिया
कहियो रुसियो-फुलियो जाईं त मनइहऽ पिया

आहो-आऽहो...
काल्हु के फिकिरिए निनिया
उड़ि जाय जो आंखिन किरिया
आके पलकन के भिरिया
सपनन में अझुरइहऽ , सझुरइहऽ सझुरइहऽ धनी
जनि छोड़ि के जगलके सुती जइहऽ पिया...

मो. 9198709575

शिखर कथाकार का अंतर्मन

मेरा ओलियागांव और *स्मृति में रहें वे*

हरियश राय

पिछले साल जब महेश दर्पण के घर में शेखर जोशी जी से मुलाक़ात हुई थी तो उनकी ऊर्जा को देखकर अंदाज़ा नहीं लगाया जा सकता था कि वे इतनी जल्दी चले जायेंगे। शेखर जी के जाने से यक़ीनन दुःख तो बहुत है लेकिन संतोष इस बात का भी है कि उन्होंने एक सार्थक जीवन जिया और अपनी रचनाओं, कविताओं, संस्मरणों के माध्यम से ऐसी धरोहर हम लोगों के लिए छोड़ कर गये हैं जिस पर हमें गर्व है। 5 अक्टूबर 2022 को उनके बेटे, संजय जोशी ने उनकी देह को उनकी इच्छानुसार अस्पताल में दान दिया, तो उस समय वहां मौजूद लोगों ने उनकी निम्न कविता का पाठ किया :

यह तो एक खेल है
प्रतिपक्ष का कोई फिरकी गेंदबाज़
यदि मेरा विकेट गिरा दे
या कोई शातिर फ़ील्डर
बाउंडरी पार करती गेंद को लपक ले
और मेरा शतक अधूरा रह जाये
तो भी मुझे अफ़सोस न होगा
मैं मुस्कराता हुआ पेवेलियन लौट जाऊंगा

देह दान के अवसर पर वहां मौजूद लोगों ने 'शेखर जोशी अमर रहें' और 'लाल सलाम' के नारों के साथ उनकी देह को अस्पताल के सुपुर्द किया।

शेखर जोशी ने अपना रचना संसार जिन लोगों को अपनी अंतश्चेतना में बसा कर बनाया है, उसका हल्का सा संकेत हमें उनके संस्मरणों की दो किताबें, *मेरा ओलिया गांव* और *स्मृति में रहें वे* में मिलता है। उन लोगों में कारख़ानों में काम करने वाले श्रमिक हैं, पहाड़ से मैदानी इलाक़ों में गये लोग हैं, पहाड़ के जीवन और लोगों के प्रति उनका लगाव है, फ़ौज में जाने के बाद पैदा होने वाली जीवन स्थितियां है। यदि हमें कारख़ानों में काम करते श्रमिकों की सूक्ष्म अभिव्यक्तियों को पहचानना है तो शेखर जोशी के रचना संसार से गुज़रना होगा। 'उस्ताद,' 'बदबू, सीढ़ियां' और 'मेंटल' जैसी कहानियां श्रम की गरिमा को पूरी गहराई के साथ पाठकों के सामने लाती हैं और पाठकों की चेतना में स्थायी रूप से दर्ज हो जाती हैं। भैरवप्रसाद गुप्त, अमरकांत, मार्कंडेय के समानांतर एक नयी रचना भूमि के साथ आने वाले एक बड़े कथाकार के रूप में शेखर जोशी हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं। शेखर जोशी एक शिखर कथाकार हैं और इस शिखर को पाने के लिए उन्होंने बहुत लंबी यात्रा की है।

शेखर जी की पहली कहानी, 'राजे ख़त्म हो गये' दिल्ली से निकलने वाली, *समास* पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। कहानी दूसरे विश्व युद्ध में फ़ौज में जाने वाले पहाड़ के युवकों और पीछे रह जाने वाली परिवार की महिलाओं पर केंद्रित है। कहानी में एक बुढ़िया है जो अपने बेटे का इंतज़ार कर रही है, लेकिन उसे नहीं मालूम कि उसका बेटा शहीद हो चुका है। गांव में एक मंत्री जी आते हैं। वे दही खाने की इच्छा करते हैं। वह बुढ़िया दही लेकर उनके पास जाती है और दही की हांडी मंत्री जी को देते हुए कहती है 'मंत्री आये हैं ना, कभी राजे भी आयेंगे। और हां, मेरा राजा भी आयेगा।' कहानी का नरेटर बुढ़िया को नहीं बताता कि उसका बेटा जीवित नहीं है। शेखर जी अपनी इस कहानी को अपनी लोकप्रिय कहानी, 'कोसी का घटवार' के बीज के रूप में देखते हैं। उनकी अंतिम कहानी 'छोटे शहर के बड़े लोग' है। यह कहानी *वागर्थ* में प्रकाशित हुई थी, जिसमें उन्होंने व्यंजनात्मक शैली में भवाली शहर में मूंगफली वाले और मछली वाले के माध्यम से हिंदू-मुस्लिम संबंधों में पनप रहे तनाव को संवेदनात्मक रूप में दर्ज किया है।

मेरा ओलियागांव व *स्मृति में रहें वे* शेखर जोशी के संस्मरणों के संकलन हैं जिनमें वे अपने गांव के लोगों, अपने परिवार, पहाड़ी जीवन, पेड़ों, वनस्पतियें, ऋतुओं, कुमाऊंनी संस्कृति को आत्मीयता से याद करने के साथ साथ अपने समकालीन कथा-लेखकों को भी याद करते हैं। ये संस्मरण हमें शेखर जोशी के बचपन से वाक़िफ़ कराते हुए तत्कालीन दौर के साहित्यिक संदर्भों से भी रूबरू करवाते हैं और उन संदर्भों और व्यक्तियों से भी साक्षात्कार करवाते हैं जिनसे शेखर जोशी का कथाकार रूप बना और विकसित हुआ। अपने बारे में एक आत्मीय क़िस्सा सुनाते हुए शेखर जी बताते है कि दामोदर जोशी और हरिप्रिया की संतान के रूप में उनका जन्म 10 सितंबर, 1932 को हुआ। जन्म कुंडली के अनुसार उनका नाम चंद्रदत्त था, लेकिन जब स्कूल में नाम लिखाया तो चंद्रशेखर लिखवाया गया जो आगे चलकर शेखर जोशी के रूप में लोकप्रिय हुआ।

शेखर जी ने अपने संस्मरणों की किताब, *मेरा ओलिया गांव* को 'ग्रामवृत्त' मानकर बच्चों के लिए लिखा है। किताब के आमुख में बताया है कि'यदि आप सोचते हैं कि आप उम्र से ही नहीं, मानसिक रूप से भी वयस्क हो गये हैं तो भी आप इसे पढ़ें क्योंकि वह बच्चा अभी भी आपके अंदर पालथी मार कर बैठा है जिसे आप पीछे छोड़ आये हैं। किताब में वर्णित शेखर जोशी जी के बचपन को और उस बचपन में चिड़ियों, कौओं को देखना, समय का पता लगाने के लिए धूप का सहारा लेना, जैसे अंश पाठकों के अंतर्मन को गहराई से उद्वेलित करते हैं। इन संस्मरणों में गांव के तीज त्योहार, लोक गीत, गांव के देवी देवता मौजूद हैं। पहाड़ों पर रहते हुए मैदानों के प्रति आश्चर्य के भाव, सूर्य की तरफ़ मुंह करके पेशाब न करने, गांव में क़तार में लगे देवदारु के पेड़ों को याद करना, धान-रोपाई के समय पर्व–त्योहार जैसे वातावरण का होना, महिलाओं द्वारा धान-रोपाई के समय बड़े बुज़ुर्ग द्वारा यह हुंकार लगाना,'धार में दिन न्हैगो, ब्वारियों... छेक करो, छेक करो (चोटी पर सूरज पहुंच गया है, जल्दी करो बहुओ, जल्दी करो) जैसे प्रसंगों के माध्यम से अपने बचपन को अपनी स्मृतियों में एक बार फिर से दोहराना तो है ही, पाठकों के मन में एक सुखद अनुभूति का भाव पैदा करना भी है। शेखर जी बताते हैं कि उनका काव्य से पहला परिचय घर में *ब्रह्मानंद स्त्रोत्र* के भजनों को गाये जाने से हुआ, जिन्हें सुनकर उनकी मां कहा करती थी, 'यह जोगी हो जायेगा।' इस किताब में शेखर जोशी ने अपने गांव के पहाड़ों का, वहां के रास्तों का, खेती करने के तरीक़ों का, पहाड़ी प्रथाओं, परंपराओं का, लड़कों के

जन्मदिन का,लंबी आयु के लिए मार्कंडेय की पूजा का, ग्रामीणों और गायों, पशु-पक्षियों के परस्पर आत्मीय संबंधों का बेहद सजीव वर्णन किया है। पशु भी इंसानों की भाषा को समझते हैं, यह बात ईजा द्वारा गाय को दूध निकालने के लिए 'आ बसंती' कह कर खेत से बुलाना और गाय का दौड़े चले आना, इजा का दूध दुहना और 'अभी ठहर' कहकर ईजा का अंदर जाना और फिर गाय को एक रोटी खिलाकर कहना 'जाओ' से पता चलता है। 'एकाकी देवदारु' नाम के संस्मरण में वे अपने गांव के लंबे-लंबे, सहस्र बांहों वाले पलटन के सिपाहियों की मुद्रा में खड़े देवदारु के वृक्षों के बीच में एकाकी देवदारु को याद करते हैं और वर्षों बाद गांव में विकास की बलि चढ़े एकाकी देवदारु को न देखकर उनके मन में ख़याल आता है कि जब सड़क को चौड़ा करने के नाम पर एकाकी देवदारु को काटा गया होगा तो किसी ने उन्हें यह न बताया होगा कि 'यह स्कूल के बच्चों का साथी है। इसे मत काटो, इसे मत उखाड़ो अपनी सड़क को चार हाथ आगे सरका लो।'

किताब में उनके परिवार पर लिखा संस्मरण स्मृति लेख की तरह है जिसमें शेखर जी ने अपने पिता के बारे में, अपनी मां की मृत्यु के बारे में लिखते हुए उस समय की कुरीतियों के बारे में बहुत क्षोभ और दुःख से लिखा है :

> हमारे बचपन के दिनों में नवजात शिशुओं और प्रसूति जनित रोगों के कारण महिलाओं की मृत्यु दर बहुत अधिक होती थी। किसी तरह की डॉक्टरी सुविधा नहीं थी और ऊपर से छुआछूत का आचार विचार इतना दक़ियानूसी था कि जच्चा-बच्चा को स्वच्छ हवा और पहनने-ओढ़ने, बिछाने का यथेष्ट सामान नहीं दिया जाता था।

इसी तरह अपने एक संस्मरण में जागर की क्रिया का उल्लेख करते हैं जिसमें अपने दुखों को दूर करने के लिए ग़रीब जनता जागर क्रिया करती है जिसमें डांगरिया को बुलाया जाता था और थाली और नगाड़ा बजाकर उसके शरीर में देवता को बिठाया जाता था। वाद्य की ध्वनि से डांगरिया का शरीर धीरे धीरे कांपता था और वह नाच-कूद कर पीड़ित व्यक्ति के सवालों का जवाब दिया करता था।

शेखर जोशी को अपनी संवेदनात्मक दृष्टि और वैज्ञानिक नज़रिये के कारण यह पहचानने और समझने में ज़रा भी देर नहीं लगती कि गांव और घर-परिवार एक सामंती सोच के तहत संचालित होते रहे हैं। औरतों के प्रति एक सामंती सोच उनके गांव में भी मौजूद थी, इसलिए घर की महिलाओं को उपेक्षा और तिरस्कार का सामना करना पड़ता था। वे महसूस करते हैं कि उनके अपने गांव में स्त्रियां अपनी इच्छानुसार कुछ भी नहीं कर सकतीं। वे पुरुष और पितृसत्ता के दायरे से बाहर नहीं जा सकतीं। उनकी आज़ादी पुरुषों द्वारा खींची गयी रेखाओं तक ही सीमित है। इन संस्मरणों में गांव में पढ़ाई की कोई व्यवस्था न होने से महिलाओं का घर के कामों में ही अपने आप को खपा देना, बीमार पड़ने पर डाम द्वारा अपना इलाज करवाना और घर में किसी के बीमार पड़ने पर पूजा में 'उच्चैण' रखकर ईश्वर से उसके ठीक हो जाने जैसे संदर्भ तो हैं ही, गांव में व्याप्त छुआछूत के प्रसंग भी मौजूद हैं। इन संस्मरणों में शेखर जी गांव में फैले जातिवाद पर भी अपनी नज़र दौड़ाते हैं जहां दलितों को हेय समझा जाता था और उन ब्राह्मणों को भी हेय माना जाता था जो अपने खेत खुद जोतते थे और श्रम-साध्य कार्य करते थे। श्रम के प्रति इसी तिरस्कार के कारण भी गांव से पलायन हुआ और गांव वीरान होते गये।

अपने बचपन को याद करना एक बार फिर से अपने बचपन को जीने जैसा है। 'अखोझड़ै' नाम के संस्मरण में बचपन में अखरोट को तोड़ने के कई प्रसंगों की मार्मिक अभिव्यक्तियां दी हैं तो

'हिरदा' में ऐसा चरित्र है जो गांव के भोलाराम की बेटी तिलिया के विवाह के दौरान तमाम कष्टों को सहते हुए उनकी भनक तक दूसरों को लगने नहीं देता। उसके समर्पण, कार्य निष्ठा और लगन को देखकर तिलिया के पिता को कहना पड़ा कि 'तिलिया का भार तो किसी तरह उतर गया, पर तुम्हारा भार कैसे उतरेगा।' देबिया, मोहनदा, नेतका हैड मासिंजर मंटू जैसे शब्द-चित्रों में देबिया का मृदु व आत्मीय व्यवहार है, तो मोहनदा का गांव के घरों के पशुओं को चराने के लिए ले जाना और पशुओं के बारे में उनके स्वामियों को बताने के प्रसंग हैं। वे एक संदर्भ का उल्लेख करते हैं कि एक बार संध्या में सभी पशु घर आ गये, पर मोहनदा के न आने पर गांववाले जंगल की ओर दौड़े। वहां जाकर उन्हें पता चला कि गांव के बच्चों के लिए काफल तोड़ने मोहनदा जब पेड़ पर चढ़े थे तो पैर फिसलने के कारण गिर गये थे। जब गांववाले मोहनदा को उठाकर घर लाये तो उनके पीछे-पीछे रंभाती हुई सूरमा गाय भी आयी जैसे कोई मां अपने बेटे के प्रति चिंतित होकर खोयी-खोयी होकर चलती है। इन संस्मरणों में वीतरागी नेतका है, जो रानीखेत–नैनीताल में अंग्रेज़ों का यह क़ानून कि 'मालरोड पर कोई हिंदुस्तानी नहीं चल सकता' को न जानते हुए भी अपनी टूटी-फूटी अंग्रेज़ी में अंग्रेज़ अफ़सर को झाड़ लगा देता है। ये प्रसंग और संदर्भ पाठकों के अंतर्मन को गहराई से उद्वेलित करने के साथ-साथ सुखद अनुभूति का भाव पैदा करते है जो कि इन शब्द-चित्रों की अद्भुत ख़ासियत है।

संस्मरणों की ये दोनो किताबें हमें शेखर जोशी के गांव व परिवार की कुछ शख़्सियतों से, उनके अपने स्वभाव के साथ परिचित कराती हैं। इन चेहरों में बूढ़े त्रिलोचन ताऊ जी शामिल हैं जो दूरबीन से नदी पार, पहाड़ की ढलान पर अपने घास के अहाते की निगरानी करते हैं और गाय को घसियारिन समझ कर वैधव्य भोगने का शाप देते हैं। इन चेहरों में मोती राम दादा जी हैं जो अपने नीबुओं को चोरी के डर से ज़मीन में दाब कर रखते हैं, मोहन दा हैं जिनसे घर की अल्हड़ लड़कियां हंसी ठिठोली करती हैं, कुलपुरोहित दुर्गादत्त जी लोहनी हैं जो विवाहोत्सव के समय वर पक्ष तथा कन्या पक्ष से किम गोत्रस्य? किम प्रर्वस्य? किम वेदाध्यायेन? जैसे सवाल पूछकर दोनों पक्षों का परिचय विस्तार से देते हैं। 'रामदत्त ताऊ जी का इंटरव्यू' और 'स्कूल में डिप्टी साहब का दौरा 'ऐसे मार्मिक संस्मरण हैं जो उस समय के परिवेश को जीवंत कर देते है और इन्हें पढ़ना एक सुखद अनुभूति से गुज़रना है।

इन्हीं संस्मरणों में एक जगह शेखर जोशी बताते हैं कि ई एम ई कोर में सिविलयन एप्रेंटिस के कोर्स के दौरान जब कारख़ाने में काम सीखने के लिए भेजा जाता था तो बढ़ई, मोची, दर्जी, लोहार, वैल्डर, मोल्डर, इलेक्ट्रिशियन, मशीनिस्ट, टर्नर आदि पेशे के कारीगर उनके गुरु बने। अपने इन साथियों को लेकर शेखर जोशी ने कुछ कहानियां लिखीं जिनके बारे में उन्होंने अपने कहानी संकलन, *डांगरी वाले* की भूमिका में कहा है कि 'यहीं मुझे 'उस्ताद' मिले जो न चाहते हुए भी अंतिम क्षणों में अपने शागिर्द को काम का गुर सिखाने को मजबूर थे, यहीं ईमानदार लेकिन 'मेंटल' क़रार दिये लोग थे, यहीं विरोध की आख़िरी चिंगारी लिये 'जी हजूरिया' क़िस्म के लोग थे, यहां 'नोरंगी मिस्त्री' था और यहीं मैंने श्यामलाल का 'आशीर्वचन' सुना और इन सब को अपनी कहानियों में अंकित किया है।'

शेखर जोशी के संस्मरणों की, *स्मृति में रहें वे* किताब में दो शब्द-चित्र शामिल हैं : 'बाबा! खोलो परद वर देखिए' व 'काले कौव्वा! काले! काले!! बाबा!' ये दोनों शब्द-चित्र अपने आप में

बेजोड़ हैं जिनमें कुमाऊं की संस्कृति रची बसी है। 'बाबा! खोलो परद वर देखिए' में कुमाऊं में बेटी के विवाह के अवसर पर परिवार में होने वाले वे सभी संदर्भ और प्रसंग हैं जिनसे इस संस्कृति की अपनी एक पहचान बनती है। पहाड़ी गांव में विवाह के पांच दिन पहले होने वाली रस्मों को गीतों में पिरोकर शेखर जोशी ने वैवाहिक कार्यक्रम को इस तरह सजीव और जीवंत बनाया है कि इन रस्मों से जुड़े सारे दृश्य पाठक के मन में आकार लेने लगते हैं। लेख की ख़ूबसूरती गीतों के साथ-साथ उनके अर्थ को स्पष्ट करना है जिससे गीतों का मर्म पाठकों को सहजता से समझ में आ सके और पाठक इन गीतों के साथ अपना तादात्म्य कर सके। 'काले कौव्वा! काले! काले! बाबा!' रिपोर्ताज में मकर संक्रांति के अवसर पर पितरों की याद में कौव्वों को खिलाने के मार्मिक प्रसंग हैं। रिपोर्ताज में लेखक के बचपन के वे दिन हैं जिनमें दादी की स्मृतियों में गांव में बच्चों में होड़ लगी रहती थी कि भोर में कौन पहले उठकर कौव्वों को गुहार लगाये कि ले कौव्वा पूड़ी / मुझे खूब बड़ा कर दे / ले कौव्वा ढाल / मुझे दे सोने का थाल / ले कौव्वा तलवार / मुझे कर दे होशियार।' इन बचपन के दिनों में लौटकर आज के माहौल में दादी मां बडबड़ाती है,'कैसे बच्चे हो गये हैं! अपने तीज-त्योहारों को ही नहीं मानते। कैसा ज़माना आ गया है! बस टेलिविज़न के सीरियल और क्रिकेट का मैच देखने पर ज़ोर है! अपने रीति रिवाज सब भूल गये! कल को मां बाप को भी भूल जायेंगे।' शेखर जोशी इस रिपोर्ताज में गांव में बह रही इस नयी बयार को दादी मां के माध्यम से गहरी संवेदनशीलता के साथ व्यक्त करते हैं।

गांव से विस्थापन की मजबूरी के रूप में बुढ़ापे को एक प्रमुख कारण बताते हुए जोशी जी अपने ओलिया गांव को याद करते हुए लिखते हैं कि 'दो वर्ष पूर्व घर की नराई लगी तो छोटे बेटे संजय को लेकर मैं पहाड़ गया। अब गांव के कुल ग्यारह घरों में से आठ घरों में ताले लग गये हैं, शेष दो घरों में एक-एक प्राणी दिया जलाने के लिए बचा है।' शेखर जोशी का यह गांव अल्मोड़ा ज़िले में कोसी नदी से थोड़ा आगे है।

संस्मरणों की इन किताबों में शेखर जोशी की कविताएं शामिल हैं। इन कविताओं में उन्होंने अपने देखे हुए संसार को अपनी तरह से रूपांतरित किया है। इस संसार में भूरी मटमैली चादर ओढ़े बूढ़े पुरखों से पहाड़ हैं, नदी किनारे का जल प्रवाह है, हिमगिरि के परकोटे से सूरज की विदाई है, आषाढ़ी बादल में धान रोपाई है, प्रवासी के स्वप्न हैं और नंगातलाई के गांव से लौटने पर स्मृतियां हैं। नंगातालाई के गांव से वापस आने पर अपने गांव की याद आना सहज स्वाभाविक है। उनकी ये कविताएं उनके अपने गांव के प्रति परम आसक्ति और राग को दर्शाती हैं।

यूं तो साठोत्तरी हिंदी कथा-साहित्य पर कई किताबें और लेख लिखे गये हैं जिनसे उस दौर के कहानीकारों के बारे में कई जानकारियां मिलती हैं, लेकिन इस दौर के कथा साहित्य को उस दौर के कथाकार की नज़र से देखना हो, तो शेखर जोशी द्वारा अमरकांत ('जरि गइलें एरी से कपार'), शैलेश मटियानी ('शैलेश : मेरी यादों में'), कमलेश्वर ('वह क़स्बे का आदमी'), विद्यासागर नौटियाल ('जब तक हम हैं ज़माना हमारा होगा') पर लिखे संस्मरणों को ज़रूर पढ़ना चाहिए। इन संस्मरणों के माध्यम से साहित्य के इन शिखर कथाकारों के अंतर्मन और इनकी जीवनशैली को जाना और समझा जा सकता है। अमरकांत के बारे में शेखर जी बताते हैं कि क़िस्सागोई और व्यंग्य का वातावरण अमरकांत जी को अपने परिवार से विरासत में मिला और *कहानी* विशेषांक में पुरस्कृत उनकी कहानी 'डिप्टी कलक्टरी' ने लोगों का ध्यान उनकी ओर खींचा। वे गोर्की की अपेक्षा अमरकांत को चेख़व के अधिक

निकट मानते हैं क्योंकि चेख़व जैसी करुणा और व्यंग्य की धार अमरकांत की कई कहानियों में है। शैलेश मटियानी के बारे में,'शैलेश मेरी यादों में' लिखते हुए वे बताते हैं कि मटियानी जी को आर्थिक मजबूरियों के कारण कई कॉपीराइट अल्प मूल्यों पर बेच देने पड़े। कमलेश्वर पर लिखे संस्मरण, 'वह क़स्बे का आदमी' में जहां वे एक ओर सन् पचास के दशक में इलाहाबाद को साहित्य का केंद्र बताते हैं और वहीं यह बताने से भी नहीं चूकते कि 'इस दौरान शहर में एक तरफ़ प्रगतिशील लेखक संघ की बैठकें हुआ करती थीं तो दूसरी तरफ़ परिमल ग्रुप भी पूरी तरह सक्रिय था। पर साथ ही इन दोनों संस्थाओं के बीच जहां एक ओर वैचारिक प्रतिद्वंद्विता थी, वहां आपसी संवाद भी बना रहता था और एक दूसरे की संस्थाओं के विशेष आयोजनों में सभी निमंत्रित होते थे।' इस संस्मरण में कमलेश्वर से 1955 में हुई पहली मुलाक़ात का विस्तार से ज़िक्र करते हुए बताते हैं कि कमलेश्वर ने *सारिका* पत्रिका के संपादन के साथ साथ 'समांतर कहानी' आंदोलन के माध्यम से लेखकों को एकजुट किया और दलित साहित्य को पहली बार व्यापक पाठक वर्ग तक पहुंचाया। 'जब तक हम हैं ज़माना हमारा होगा' में शेखर जी विद्यासागर नौटियाल को शिद्दत से याद करते हुए यह मानते हैं कि उनका अधिकांश लेखन जातीय स्मृति का गौरवशाली दस्तावेज़ है।

शेखर जोशी के मन में साहित्य के संस्कार कैसे पड़े, इसका बेहद रोचक वर्णन करते हुए वे बताते हैं कि उनके मन में कविता के प्रति रुचि पैदा करने के लिए *गीत गोविंद* की बहुत ज़्यादा भूमिका है। उनके मंझले मामा द्वारा लिखित *ब्रह्म सूत्र* की टीका देखकर उनके मन में भी लेखक बनने की इच्छा जागृत हुई। इन संस्मरणों में शेखर जी अपने परिवार के बारे में बताते हैं कि नौ बरस की उम्र में ही उनके दादा-दादी का निधन हो गया था और पिता ने बयालीस वर्ष की उम्र में ही मृत्यु पायी थी। मां की मृत्यु भी प्रसव काल में स्वास्थ्य संबंधी सुविधाएं न होने के कारण ही हुई। पिता और पद्मादत्त ताऊ जी के प्रसंग गहरी रोचकता के साथ एक अंतर्वेदना लिये हुए हैं।

शेखर जोशी जैसे आस्थावान कथाकार ने अपने बचपन, अपने गांवों को साहित्यक संसार से परिचित करा कर अन्य लेखकों को भी ऐसा करने की प्रेरणा दी है। इन संस्मरणों में कोरी भावनाएं ही नहीं हैं, बल्कि अपने अतीत को बेहद संवेदना तथा रोचकता से याद किया है। इस बहाने वे उस समय के समाज को, पहाड़ों के रीति-रिवाज़ों को, पहाड़ी लोगों के निश्छल स्वभाव और उनकी सोच को भी सामने लाते हैं। अपने गांव के प्रति एक गहरी आत्मीयता और लगाव इन दोनों किताबों के संस्मरणों में समाया है।

कथाकार नवीन जोशी के ब्लॉग से पता चला कि शेखर जोशी के जाने के बाद उनके द्वारा लिखी गयी, 'मन की बात' नाम की डायरी परिवार के सदस्यों द्वारा पढ़ी गयी जिसमें उन्होंने अपने सपनों के बारे में और उत्तराखंड की सरकार से की गयी कुछ अपेक्षाओं के बारे में लिखा है। इस डायरी में उन्होंने लिखा है कि 'मैंने कभी संपत्ति जोड़ने की कोशिश नहीं की। मेरी प्रकाशित और अप्रकाशित पुस्तकें ही मेरी संपत्ति हैं। गांव की पैतृक संपत्ति जो अभी ताऊ जी और बाबू के नाम पर है, उसका उपयोग उनके वारिस जिस तरह चाहेंगे, करेंगे। मेरी एक इच्छा है कि गुसांई सिंह के परिवार को जिसे बाबू ने अपने घर में आश्रय दिया था, उसे बेदख़ल न किया जाये। उनके कारण हमारा प्यारा घर आज भी पूरी शान से खड़ा है।'

इस डायरी में उन्होंने उत्तराखंड सरकार से तीन अपेक्षाएं की हैं। पहली, सुनारी दड़मिया से

लेकर विनायक थल तक (गणनाथ) की जंगलात की सड़क का नामकरण 'हरीकृष्ण पांडेय मार्ग' किया जाये क्योंकि पांडेय जी ने स्वतंत्रता संघर्ष में इस क्षेत्र में जागृति प्रदान की थी और कई बार जेल गये थे। उन्होंने यहां विद्यापीठ की स्थापना कर बच्चों के लिए स्कूली शिक्षा की व्यवस्था की थी। दूसरी, सरकार हमारे गांव, ओलिया गांव को हर्बल विलेज बना दे, क्योंकि इस गांव की जलवायु, ओषधि पादपों के उत्पादन के लिए अनुकूल है और तीसरी, पूर्व दिशा में बमणतोई से सुपकोट जाने वाले मार्ग तक एक दीवार उठाकर एक विस्तृत जलाशय का निर्माण किया जाये। यह बहुत सुंदर पर्यटन स्थल बन सकता है।

शेखर जोशी अपने जीवन के अंतिम दिनों में भी मैग्नीफ़ाइंग लेंस से पढ़कर यह जानने की कोशिश करते रहे कि क्या नया लिखा जा रहा है। उन्होंने अपने काम को ईमानदारी के साथ एक मिशन के रूप में अंजाम दिया। शेखर जोशी एक ऐसी शख़्सियत के रूप में हमारे बीच रहे जिन्हें हर पीढ़ी का रचनाकार आदर और सम्मान देता रहा। अपने जीवन के संघर्षों से तपकर जो ईमानदारी और पारदर्शिता उन्होंने हासिल की, वह अपने आप में एक मिसाल है। शेखर जोशी भले ही अपने जीवन का शतक पूरा न कर पाये हों लेकिन अपनी कहानियों, संस्मरणों और कविताओं के ज़रिये हिंदी कथा साहित्य में हमेशा याद किये जाते रहेंगे।

मो. 9873225505

मैं चाहता हूं तुमसे प्रेम करना

शहंशाह आलम

एक औरत सड़क पर चल रही होती है, तो उसके रास्ते में कांच बिखेर दिये जाते हैं। ऐसा करने के पीछे की वजह बस इतनी-सी होती है कि अब यह बात किसी को बर्दाश्त नहीं है कि कोई औरत किसी रास्ते से चलकर बाहिफ़ाज़त अपने घर पहुंचे। ऐसा लिखकर मैं अपने भारत के स्त्री-समाज को डराना नहीं चाहता। मैं बस उत्तरप्रदेश के हाथरस जैसे शहर की याद दिलाना चाहता हूं, जहां एक लड़की का बाज़ाब्ता बलात्कारी बलात्कार करता है, लेकिन उस बलात्कृता को इंसाफ़ दिलाने के बजाय वहां का प्रशासन यह सिद्ध करने में व्यस्त हो जाता है कि उस लड़की का बलात्कार नहीं किया गया।

मेरे मन में ये ख़यालात अशोक शुभदर्शी की कविता 'माही का दर्द-2013' पढ़कर आ रहा है। हरियाणा की इस माही का बलात्कार नहीं हुआ था बल्कि माही पैंसठ फ़िट गहरे बोरवेल में गिरती है और जान से चली जाती है। मेरा यही कहना है कि एक औरत कहीं पर भी सुरक्षित नहीं है। मेरी यह बात कोरी ख़ामख़याली नहीं है। स्त्री कोई हो, वह हमेशा ख़तरे से घिरी रहती है। हमेशा उदासी से घिरी रहती है। हमेशा ऊब से घिरी रहती है। हमेशा दर्द से घिरी रहती है। हमेशा ज़ख़्म से घिरी रहती है। अशोक शुभदर्शी के शब्दों में कहें तो, 'कई माही गिरीं / पहले भी / इन गड्ढों में / और वे नहीं निकल पाईं / इन गड्ढों से कभी / पता नहीं चला दुनिया को / उनके अंतहीन दर्द का' (पृष्ठ : 109-110)।

अशोक शुभदर्शी की कविताओं का संग्रह *रैम्प पर ख़ालिस स्त्री* विषयक कविताओं का संग्रह नहीं है। ये कविताएं विविध विषयों को केंद्रित करके लिखी गयी हैं। ये कविताएं अपने समय से वाजिब सवाल पूछने की कविताएं हैं। ये कविताएं आदमी के हिस्से का सवाल इसलिए भी पूछती हैं कि आदमी के आसपास की स्थितियां इतनी निराशा से भर दी गयी हैं कि आदमी को अब बस अपनी निराशा पसंद आने लगी है और निराशा में रहते हुए वह शासक से और शासन से सवाल करना भूल गया है। आदमी चूंकि अब सवाल नहीं पूछता, सो शासक और शासन, दोनों क्रूरता की हदें पार करने में लगे हैं और यह एक निहायत शर्मनाक बात है कि जिस शासक और शासन को आदमी की रक्षा के लिए काम करना चाहिए, वह आदमी के हितों की हत्या बेहिचक करता चला आ रहा है। आदमी को सवाल करना भी होता है तो अपनी बग़ल में रहने आये आदमी से या मुहल्ले में 'आये सब्ज़ी वाले से या उनके बच्चों के साथ खेलने चले आये बच्चों से उसका धर्म पूछकर अपना मानव-धर्म पूर्ण कर लेता है। ऐसा करके अब कोई आदमी अपने भीतर कोई ऊब महसूस नहीं करता। लेकिन जब अशोक शुभदर्शी जैसा ईमानदार कवि आदमी हो तो उनको इस नये मानव-धर्म से ऊब ज़रूर होती है, 'चढ़कर / खिलौने के पुल पर / उतर जाते हैं बच्चे / सपनों के संसार में / चढ़कर कविताओं के पुल पर / उतर जाते हैं / कुछ लोग / इस पार समझ की दुनिया में / चढ़कर / धर्म के पुल पर / ठहर जाते हैं लोग / पुल पर ही' ('पुल' / पृष्ठ : 33)।

धर्म जब नक़ली होता है तो वह हमारे अंदर बस उदासीनता का संचार करता है। असली धर्म कभी किसी दूसरे धर्म के लोगों से यह सवाल करने की इजाज़त नहीं देता है कि तुम अगर हमारे धर्म के नहीं हो तो तुमको हमारे मुहल्ले में आने-जाने का हक़ नहीं है। हालांकि हम सदियों से एक साथ उठते-बैठते, हंसते-बोलते रहे हैं। लेकिन हमारे यहां की वर्षों पुरानी सौहार्द की जो परंपरा रही है, उस परंपरा को अब धर्म की आड़ में ही ख़त्म करने की पुरज़ोर कोशिश की जा रही है। देश का मुखिया ही जब देश की सबसे ऊंची कुर्सी पर बैठकर बस यह घोषणा करता फिरे कि वह बस एक धर्म की जनता का मुखिया है तो बेचारी बहुसंख्यक जनता क्या करे। अब देश में वैसे भी कुछ अच्छा करने के लिए बचा क्या है—न नौकरी है, न कोई रोज़गार है, बस धर्म का अंधा कुआं है। अशोक शुभदर्शी एक संवेदनशील कवि हैं और सत्ता के इस एजेंडे को पूरी हिकमत से समझते रहे हैं, तभी यह कहने का साहस करते हैं कि 'मैं डूबा नहीं / अंधकूप में / उसे लगा / मैं डूब गया अंधकूप में / और उसने लगा दी छलांग / अंधकूप में' ('आशंका' / पृष्ठ : 53)। आज जो भी समझदार कवि हैं, वे सत्ता के इस एजेंडे के ख़िलाफ़ खड़े हैं। इन कवियों को यह पता है कि देश संविधान से चलता है, धर्म की किताब से नहीं। अशोक शुभदर्शी सत्ता के इस काले कारनामे की काली कथा को निर्णायक अंजाम तक पहुंचाना चाहते हैं, 'आज के इस हालात में / आवश्यक है / कहानी को निर्णायक स्थिति तक पहुंचाना / अन्यथा कहानी भटक भी सकती है / यही तो मेरा दायित्व है / कहानी को निर्णायक स्थिति तक ले जाना' ('कहानी से जुड़ना' / पृष्ठ : 47)।

अशोक शुभदर्शी का यथार्थ-ज्ञान काफ़ी गहरा है। इनकी कविता का फ़लक उससे भी बड़ा। इनकी कविताएं पढ़ते हुए आप इस बात का अंदाज़ा नहीं लगा सकते कि वे आपको कहां और किससे मुठभेड़ के लिए तैयार कर रही हैं। अशोक शुभदर्शी की अगर कोई प्रेम कविता है तो वह बस प्रत्यक्ष में प्रेम कविता है। यानी यह प्रेम कविता किसी प्रेमिका की वजह से प्रेम कविता नहीं है। यानी प्रेम के थोड़े से पानी में बह जाने के बजाय यह प्रेम कविता आपको किसी बड़ी लड़ाई के तैयार करवा रही होती है, वह भी मुहब्बत से। इस कवि को यह बात भी पक्के तौर पर मालूम है कि आज जिस तरह का ख़तरा हाकिम लोगों से है, उस ख़तरे से हर किसी का प्रेम भी डरा हुआ है। यही कारण है कि लोगबाग अब प्रेम न करके हिंसा करने पर अधिक उतारू दिखायी देते हैं। *रैम्प पर* में प्रेम की दो कविताएं हैं। दोनों कविताएं आपको अपने प्रेम के बचाव में खड़े रहने का साहस देती हैं। आज जबकि प्रेम करने का तरीक़ा, प्रेम करने का बरताव, प्रेम करने का ढब बदल दिया गया है, तब भी अशोक शुभदर्शी हमें प्रेम करने का नया तरीक़ा, नया बरताव, नया ढब अपनी कविता के माध्यम से देते हैं। यानी इनकी प्रेम कविताएं पढ़कर हम अपनी ऊब को भुलाकर किसी कच्चे, टेढ़े और घास से भरे हुए रास्ते पर चलकर प्रेम के नये भविष्य में पहुंच सकते हैं। प्रेम भी तो अलिफ़लैला की दास्तान की तरह है जो हज़ार रात तक चलती चली जाती है और लंबी दास्तान के आख़िर में कोई कवि बस इतना ही तो चाहता है, 'मैं चाहता हूं / बदले में / कुछ भी नहीं / तुम्हारी तरफ़ से / तुम्हारा प्रेम भी / तुम्हारी घृणा भी।'

अशोक शुभदर्शी की कविताएं आकार-प्रकार में छोटी ज़रूर होती हैं, लेकिन इन कविताओं का फ़लक बड़ा है। यही कारण है कि इनकी कविता को आप फ़लां-फ़लां व्यक्ति की कविता के साथ जोड़कर नहीं देख सकते। इनकी कविता का अपना फ़लसफ़ा है, मुहब्बत करने का भी, ज़िंदगी को जीने का भी। ज्ञान बघारने का भी, तर्क करने का भी। तभी अपना यह कवि अपने प्रेम से प्रेम भी

स्वीकार करना चाहता है और घृणा भी। अपना यह कवि ऐसा इसलिए करता है कि उसे यह बात भी अच्छे से मालूम है कि अपने यहां अब दोस्त-अहबाब, दुश्मन, नेता, व्यापारी सब कोई प्रेम की बजाय घृणा बांटते फिरते नज़र आते हैं। हमारी नीयत अब साफ़ जो नहीं होती है, 'कौन पता करे / लावारिस ब्रीफ़केस में / बम है कि / रुपया / कौन पता करे / अनजान आदमी / सच्चा है कि / झूठा / कौन पता करे / नेता की नीयत / सेवा की है कि / व्यापार की' ('नीयत' / पृष्ठ : 65)। अशोक शुभदर्शी अपने एक अलग मिज़ाज, अपनी एक अलग तबीयत, अपनी एक अलग तासीर के कवि हैं। लेकिन मिज़ाजी कवि यानी घमंडी कवि नहीं हैं। यही वजह है कि वे कविता में कोई चमत्कार पैदा न करके यथार्थ का दामन पकड़े रह कर, कविता की जो दुनिया सजाते-संवारते हैं, वह हमारी अपनी दुनिया हो जाती है। वही साधारण-सी दुनिया, जहां हम किसी मज़दूर आदमी, किसी किसान आदमी, किसी कामगार आदमी की तरह काम करते हुए जीते हैं, 'हमारे सबसे अच्छे ब्यूटी पार्लर हैं / हमारे खेत / हमारे कारख़ाने / और / हमारी खानें' ('ब्यूटी पार्लर' / पृष्ठ : 42)।

अशोक शुभदर्शी अपनी किसी कविता में ग़लतबयानी से काम नहीं लेते। यानी इनकी कोई कविता आप पढ़कर देख लीजिए, यह कवि किसी सच्चे आदमी सरीखा बस सच लिखता दिखायी देता है। ऐसा है तभी यह कवि आत्मगत कवि न होकर सर्वसाधारण का कवि है। ऐसा है तभी यह कवि पुल के बहाने, ज़िंदगी के बहाने, प्रेम के बहाने, पानी के बहाने, बादल के बहाने, फूल के बहाने, मां के बहाने, मृत्यु के बहाने, छाता के बहाने, पेड़ के बहाने, पतंग के बहाने, औरत के बहाने, यानी कविता लिखने का जो भी बहाना बनता है, हर बहाने आम आदमी के सुख और दुःख तक पहुंचना चाहता है। आम आदमी के डर तक पहुंचना चाहता है। संग्रह में शामिल इनकी 'डर' शीर्षक कविता का पाठ करके आप भी देख लीजिए, 'हथियार है / मेरा भाई ही / मेरे विरुद्ध / मेरे दुश्मन का / हथियार है / मेरा मित्र ही / मेरे विरुद्ध / मेरे दुश्मन का / हथियार है / मेरी प्रेमिका ही / मेरे विरुद्ध / मेरे दुश्मन का' (पृष्ठ : 117)। या फिर इनकी कविता 'रैम्प पर औरत' को ही लीजिए—इस कविता का जो लक्ष्य है, यह कविता सीधे वहीं जाकर वार करती है, 'अच्छा है कि / चलने लगी है औरत / रैम्प पर / एकाग्रचित्त होकर / अच्छा है कि / रैम्प पर / चलने के योग्य हो गयी है / औरत / वह खींच सकती है / ध्यान / बख़ूबी / वह हो गयी है / खींचने के योग्य / दुनिया का ध्यान / कुछ वस्तुओं की तरफ़' (पृष्ठ : 59)।

आज कविता लिखने का अर्थ जटिल कविता लिखना भर रह गया है। हमें यह भी समझना होगा कि दुरूह कविताओं से हमारा आम पाठक हमसे जुड़ने से अकसर कतराता रहा है। अशोक शुभदर्शी कविता में आने वाली हर तरह की जटिलताओं से ख़ुद को अलग रखते हुए रचनारत रहते चले आ रहे हैं। इसी वजह से आप इनकी जिस किसी भी कविता को पढ़ने के लिए चुनते हैं, उसे बाआसानी पढ़ लेते हैं। संग्रह की कुछेक कविताएं सतही ज़रूर लगती हैं, लेकिन संपूर्णता में कहिए तो अशोक शुभदर्शी की कविताएं विचार से रहित, पाखंडपूर्ण तथा दिखावटी नहीं हैं। ऐसा होना समकालीन हिंदी कविता के लिए सुखकर है।

मो. 09835417537)

समीक्षित पुस्तक : *रैम्प पर (कविता-संग्रह)*
कवि : अशोक शुभदर्शी,
प्रकाशक : मीनाक्षी प्रकाशन, जमशेदपुर

पुस्तक चर्चा

ऊपर से ज्यों स्त्रोत सूखते

मिथिलेश श्रीवास्तव

कवि, गद्यकार और राजस्थान जनवादी लेखक संगठन के सक्रिय संगठनकर्ता राघवेंद्र रावत की डायरी, *मारक लहरों के बीच - कोरोना काल की डायरी* जयपुर के मोनिका प्रकाशन से हाल ही में प्रकाशित हुई जो कोरोना समय के नितांत निजी अकेलेपन में लिखी गयी है। उन दिनों का यह तो वैश्विक अनुभव रहा है, लेकिन लेखक का अनुभव इस अर्थ में विशिष्ट रहा है कि वह कोरोना संक्रमण की वजह से घर की चारदीवारी में क़ैद है। मगर वह कोरोना की वजह से घटित हो रही विश्वव्यापी घटनाओं पर नज़र रखता है और अनुभव करता है कि वह सब कुछ उसके आसपास ही घटित हो रहा है। यह लेखक की वैश्विक दृष्टि का परिचायक है। इस पुस्तक पर चर्चा करने से पहले लेखक का परिचय देना मुनासिब होगा।

राघवेंद्र रावत सुपरिचित कवि हैं। उन के दो कविता संग्रह हैं, *अंजुरी भर रेत* जो कि 2007 में प्रकाशित हुआ और जिसके लिए उन्हें 2008 में राजस्थान साहित्य अकादमी के सुमनेश जोशी पुरस्कार से सम्मानित किया गया । उनका दूसरा संग्रह, *एक चिट्ठी की आस में* 2011में प्रकाशित हुआ। कविता के बाद उनका पसंदीदा क्षेत्र है रंगकर्म जिससे वे विगत पैंतीस वर्षों से जुड़े हुए हैं। वे भारतीय रंगकर्म को कई तरीक़े से समृद्ध करते रहे हैं, मसलन कई रंगप्रस्तुतियों में अभिनय किया है; कई नाटकों के नाट्य गीत लिखे हैं और कई रंग-समीक्षाएं लिखी हैं।

जीवनयापन के लिए एक अभियंता के रूप में राजस्थान सरकार के सार्वजनिक निर्माण विभाग में कार्यरत रहे। जनवादी लेखक संघ से उनका लंबा जुड़ाव रहा तो ज़ाहिर है वे जनवादी कवि, लेखक और रंगकर्मी हैं और जनवाद के पक्षधर हैं । उन्होंने *अपने समय का आज* (राजस्थान की समकालीन कविता) कविता संग्रह का संपादन किया है जिसमें राजस्थान के अस्सी कवियों की कविताएं हैं। यह संकलन जनवादी लेखक संघ के लिए किया गया है। इसे कुछ अच्छे लेखों और बहुत सारी अच्छी कविताओं के लिए पढ़ा जाना चाहिए। उनकी एक कविता है, 'दुःख, पेड़, पर्वत और हम ' जिसकी कुछ पंक्तियों को उनकी डायरी के साथ मिला कर पढ़ा जा सकता है :

दुःख हवा की तरह बहते रहते हैं
यहां से वहां तक / कल से आज तक
आज से अनंत काल तक
तुमसे मुझ तक /मुझसे तुम तक
उम्र भर तक भी

कोरोना के गंभीरतम समय में दुःख और मृत्यु हवा में तैर रहे थे और चारों तरफ़ तैर रहे थे। कोरोना संक्रमण आदमी की हैसियत को नहीं देख रहा था, जो उसके रास्ते में आये, उनको उसने अपनी चपेट में ले लिया। इस महामारी की चपेट से बचने के लिए लोगों ने घर की चारदीवारी में क़ैद हो जाना बेहतर समझा। लेखक भी जयपुर के अपने घर में क़ैद हो गया लेकिन दुनिया को लेकर बेचैन रहा; ऑस्ट्रेलिया और मुंबई में रह रहे अपने बच्चों की सलामती की चिंता करता रहा तो शहर से गांव की ओर जाने के लिए सड़क पर निकले कामगारों के लिए भी बेचैन होता रहा।

मारक लहरों के बीच - कोरोना काल की डायरी में मारक का मतलब जो जान ले ले, लहरों का मतलब कोरोना की लहरें और जीवन इन लहरों के बीच। यह डायरी 23 मार्च, 2020 से शुरू होती है जब पहली कोरोना लहर की वजह से तालाबंदी की घोषणा केंद्र की सरकार ने की थी। 21 दिनों की डायरी लगभग रोज़ लिखी गयी और इन पन्नों में आदमी के भीतर गहराता कोरोना का भय और कवि का बढ़ता हुआ अकेलापन, सड़कों और गलियों का बढ़ता सन्नाटा, चारदीवारी में क़ैदी सरीखा जीवन चित्रित हुआ है । ऐसी विषम और विकट और जानलेवा संक्रमण के दौर में जीवन संकट में पड़ गया था। अभी तो लगता है कि सब कुछ जाना पहचाना है, लेकिन धीरे धीरे जब समय के साथ उन परिस्थितियों का विस्मरण होने लगेगा तो यह किताब ही, और ऐसी कई किताबें, हमें कोरोना की याद दिलायेंगी। इस किताब में वह अकेलापन दर्ज़ है जिससे हम सब गुज़रे। उन दिनों कोरोना वायरस के घर में आ जाने के डर से सबने अख़बार लेना भी बंद कर दिया था। राघवेंद्र रावत बतलाते हैं कि ख़बरों का ज़रिया टीवी मीडिया, ऑनलाइन साइट्स और मोबाइल पर मित्रों से बातचीत ही रहा। उन्होंने उन सभी घटनाओं को अपनी दैनंदिनी में शामिल किया है जो वास्तव में घटित हो रही थीं या अफ़वाह थीं, लेकिन बाद में सही साबित हुईं। इस डायरी का सिलसिला दिसंबर, 2021 तक चलता है। 23 मार्च, 2020 से शुरू होकर दिसंबर, 2021 के बीच बहुत कुछ हुआ और कोरोना की तीन लहरें आयीं जिसमें दूसरी लहर सबसे अधिक ख़ौफ़नाक थी । लाखों लोग कोरोना संक्रमण से मरे, कई लेखक मरे, ऑक्सीज़न की कमी से मरे, अस्पतालों में बिस्तर न मिलने से मरे, देखभाल की कमी से मरे। एक डॉक्टर पत्नी को संक्रमण से पीड़ित उसके पति से मिलने की इजाज़त नहीं थी, इज़ाज़त होती भी तो मिलना मौत को आमंत्रण देना था। ऑक्सीज़न की कमी थी लेकिन केंद्र की सरकार ने कभी नहीं माना कि ऑक्सीजन की कमी से कोई कोरोना संक्रमित मरा। राघवेंद्र रावत 25 मई, 2020 को अपनी डायरी में लिखते हैं कि 'किताबें मेरी संजीवनी बनी हुई हैं। घर से बाहर कदम रखे हुए महीना गुज़र गया। किताबें, लैपटॉप, और कभी-कभार टीवी। ओटीटी ने सिनेमा हॉल की जगह ले ली है।'

196 पृष्ठों की यह किताब कोरोना कथाओं से भरी हुई है। 24 मार्च की अपनी डायरी में लेखक एक अत्यंत कारुणिक घटना की कहानी लिखता है। एक डॉक्टर जो कोरोना संक्रमित लोगों का इलाज करते करते ख़ुद संक्रमित हो गया और मृत्यु के क़रीब पहुंच चुका है, वह अपनी डॉक्टर पत्नी और छोटी बेटी से नहीं मिल सकता था। 20 फ़ीट की दूरी से अपने दोनों परिजनों को देखता है। पत्नी को मालूम है कि वह मुलाक़ात अंतिम मुलाक़ात है। इस दृश्य का काव्यात्मक वर्णन लेखक करता है अपनी डायरी में। 'पत्नी भीतर ही भीतर कांप रही है। एक हाथ से बेटी को थामे और दूसरे हाथ से मरते हुए पति को दूर से विदा करते हुए।' कैसा लगता होगा ऐसे विछोह के पल में! कितना कठोर बनाया होगा उस स्त्री ने अपने आपको। यह भावुकता नहीं है, यह यथार्थ है जो पूरे हिंदुस्तान और विश्व में दिखायी दिया था उन दिनों। तालाबंदी के दौरान लोगों को इधर से उधर भागते हुए देख कर लेखक को आज़ादी के समय हुए विभाजन के समय की अफ़रातफ़री और क़त्लेआम के दृश्यों की याद आती है जो उसने *ट्रेन टु पाकिस्तान* और *लाहौर* फिल्मों में देखे थे। एक सच और है कि शहर से लौटे लोगों को अपने ही गांव में घुसने से रोका गया था। कोरोना मनुष्य की त्रासदी के नये चेहरे को दिखा गया। तालाबंदी के चौथे दिन लेखक अपनी डायरी में जयपुर शहर में फ़ैल रहे सन्नाटे का ज़िक्र करता है। 'मेट्रो ट्रेनें बंद हो गयी हैं । पर्यटक स्थल बेरौनक हो गये हैं। जौहरी बाज़ार, सुभाष चौक, आमेर रोड, मिर्ज़ा इस्माइल रोड की धड़कनें रुक गयी हैं।' अगर जगहों के नाम बदल दिये जायें तो पूरे हिंदुस्तान का

जयपुर जैसा ही हाल हो गया था। लेखक लिखता है, 'बेटा मृणाल ब्रिस्बेन में है। न हम ऑस्ट्रेलिया जा सकते हैं, न मृणाल जयपुर आ सकता है। अपना अपना संताप लिये कोरोना से लड़ना है।'

कोरोना की ऐसी त्रासदी के बीच भारतीयों को सांप्रदायिकता, एक समुदाय के प्रति फैल रही घृणा, हिंदुओं के ध्रुवीकरण की राजनीति को भी झेलना पड़ा था। दिल्ली के निज़ामुद्दीन मरकज़ के तबलीगी जमात में जमा हुए सैकड़ों लोगों को संदेह से देखा जाने लगा था, हालांकि उनमें से कई अपने अपने शहरों, देशों और ठिकानों पर लौट गये थे, फिर भी जो जमात की बिल्डिंग में पाये गये उनमें से कई कोरोना संक्रमित थे। इस बात को सांप्रदायिक शक्तियों ने सांप्रदायिक वैमनस्यता फैलाने के लिए इस्तेमाल किया था। तबलीगी जमात के लोगों पर लगाये गये आक्षेप के बारे में लेखक का कहना है कि 'तंत्र की ख़ामियों पर प्रश्नचिन्ह है।' यह सही है क्योंकि बाद में हमें पता चला कि तबलीगी जमात पर सियासत की गयी। नफ़रत का वायरस अधिक ख़तरनाक था। मरकज़ की जमात के बाद मुसलमानों को पूरे देश में कोरोना वायरस का ज़िम्मेवार बताया गया जबकि वायरस धर्म और वर्ग के आधार पर भेदभाव नहीं कर रहा था। इटली में भी इसी तरह का भेदभाव किया गया था। जापान और हांगकांग के होटलों में चीनी लोगों के प्रवेश पर पाबंदी लगायी गयी थी। लेखक न्यूज़ीलैंड की प्रधानमंत्री जेसिंडा की तारीफ़ यह कह कर करता है कि वह अपने देशवासियों का ख़याल एक मां की तरह कर रही है। लेखक सीरिया में शरणार्थी शिविरों में रहने वालों की भी चिंता करता है। ग्रीस के मोरिया शरणार्थी कैंपों में रह रहे लोगों की भी चिंता करता है। शासन के द्वारा अवैज्ञानिकता फैलाने की प्रवृति पर व्यंग्य करते हुए राघवेंद्र लिखते हैं कि 'कोरोना से लड़ने की तैयारियों का ब्योरा देने के बजाय प्रधानमंत्री मोदी ने, 3 अप्रैल, 2020 को नौ बजे लाइट बुझा कर 9 मिनट तक दीया जलाने का आह्वान किया। टीवी चैनलों और सोशल मीडिया के मार्फ़त ज्योतिषविद मोदी के आह्वान को ठीक बताते हुए कहते हैं कि 'दीया जलने का समय अच्छा है।' मोदी सरकार ने कोरोना समय का उपयोग अंधविश्वास, धर्मोन्माद और वैज्ञानिकविहीनता को बढ़ावा देने में किया।

13 अप्रैल, 2020, इक्कीस दिनों की पहली तालाबंदी का आख़िरी दिन था। लेखक को याद आता है कि उसी तारीख़ को 1699 में गुरु गोविंद सिंह जी ने सिक्ख पंथ की स्थापना की थी। 13 अप्रैल, 1913 के दिन रोलेट एक्ट का विरोध करने के वास्ते बुलायी गयी जनसभा में जमा हुए निहत्थे लोगों पर जनरल डायर ने गोलियां चलवायी थीं जिन से सैकड़ों लोग मारे गये थे। यह संयोग ही कहा जायेगा कि पहली कोरोना लहर के पहले के इक्कीस दिनों की तालाबंदी का आख़िरी दिन जलियांवाला बाग़ गोली कांड की तारीख़ पर था। कोरोना में भी वही हो रहा था। कोरोना संक्रमण की कोई दवाई नहीं थी; अस्पताल के इंतज़ाम कम पड़ रहे थे। बिस्तर, डॉक्टर और आक्सीज़न की कमी थी तो मास्क वग़ैरह की आपूर्ति भी कम थी। 14 अप्रैल, 2020 को लॉक डाउन की मियाद बढ़ाकर 3 मई तक कर दी गयी। फ़ैक्ट्री मालिकों से कहा गया कि श्रमिकों को काम से नहीं निकालें लेकिन लाखों मज़दूरों की छंटनी की गयी।

इज़राइल के हिब्रू विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर युवाल नोआ हरारी के एक लेख के हवाले से कहा गया है कि हमारे मेडिकल डाटा का सरकारें बेजा इस्तेमाल कर सकती हैं। सरकार का मेडिकल निगरानी तंत्र हमारे मेडिकल डाटा का, हमारे राजनीतिक विचारों और हमारे व्यक्तित्व को समझने जानने के लिए इस्तेमाल कर सकता है। सरकारें यह भी जान लेगीं कि लोगों को किस बात पर ग़ुस्सा आ सकता है, किस बात पर हंसी आ सकती है। ग़ौरतलब है कि कोरोना के दौरान सरकार ने एक ऐसा

एप्प बनवाया था जिससे हमारी निगरानी की जा रही थी। इस संदर्भ में राघवेंद्र की टिप्पणी है कि जो ख़तरे नोआ हरारी ने गिनाये हैं उनके लक्षण हमारे देश में देखे जा सकते हैं। जहां बुकशैल्फ़ में रखी क़िताबों के आधार पर तय किया जा रहा है कि आप देशभक्त हैं या देशद्रोही। एक मई मज़दूर दिवस के रूप में मनाया जाता है। एक मई, 2020 पहले कोरोना दौर की दूसरी तालाबंदी के समय पड़ा था। इस मौक़े पर राघवेंद्र अपने अकेलेपन में मज़दूरों के हक़ और उन पर हो रहे ज़ुल्म के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने वाले अल्बर्ट पार्सन्स और उनकी पत्नी लूसी पार्सन्स को याद करते हैं। जेल से अल्बर्ट के द्वारा लूसी को लिखे गये पत्रों के हिंदी अनुवाद भी डायरी में दर्ज़ हैं। अल्बर्ट की चिट्ठियां बहुत मार्मिक हैं। कोर्ट में लूसी की दलीलें भी बहुत मार्मिक हैं। उतनी ही मार्मिक है 10 मई, 2020 की डायरी, जोकि मदर्स डे पर लिखी गयी है। उसकी पहली पंक्ति है, 'कल जब मैं पटरियों पर रोटियों के साथ चटनी और उसके पास पड़ी लाशें देख रहा था, तब मुझे तुम बहुत याद आयी मां।' 27 मई, 2020 की डायरी में लेखक जवाहरलाल नेहरू को और राष्ट्रवाद के बारे में उनके विचारों को याद करता है और उन्हें उद्धृत करता है। 30 जून, 2020 की डायरी में मुक्तिबोध के हवाले से राघवेंद्र लिखते हैं कि लेनिन ने कहा था कि ट्रेड यूनियनों में किसी न किसी तरह जमे हुए लोग क्रांतविरोधी हो जाते हैं। उन्होंने कितनी बड़ी सच्चाई की ओर ध्यान खींचा था। क्रांतिविरोधी का अर्थ जनविरोधी होना है। लोकतंत्र में सत्ता पर क़ाबिज़ रहने की प्रवृति या चुनाव जीतने की मानसिकता ख़तरनाक है। कोरोना की पहली लहर की डायरी, 7 अगस्त , 2020 को ख़त्म होती है और फिर शुरू होती है 9 मार्च, 2021 को जब कोरोना की दूसरी लहर उफनने लगती है। दूसरे दौर में ज़्यादा लोग मरे थे। दूसरी लहर के दौरान कुंभ मेले का आयोजन हुआ था जिसकी वजह से भी संक्रमण और अधिक फैला।

28 अप्रैल, 2021 की अपनी डायरी में राघवेंद्र रावत कोरोना संक्रमण से कवि, आलोचक और चित्रकार विजेंद्र की मृत्यु का उल्लेख करते हैं। बहुत मार्मिक प्रसंग है। दोनों एक दूसरे के आत्मीय थे। विजेंद्र की मृत्यु के एक दिन पहले उनकी पत्नी की मृत्यु कोरोना संक्रमण से ही हुई थी। विजेंद्र अपने बेटे राहुल नीलमणि के साथ गुरुग्राम में कई वर्षों से रह रहे थे। विजेंद्र प्रगतिशील आंदोलन के प्रमुख कवियों में थे। उनके बेटे नीलमणि भी कोरोना संक्रमण से ग्रसित हुए थे। विजेंद्र का अंतिम संस्कार उनकी पुत्रवधू वसुधा ने किया। जयपुर से उनकी बेटी गुरुग्राम नहीं जा सकी क्योंकि उन दिनों एक राज्य की सीमा से दूसरे राज्य की सीमा में प्रवेश वर्जित कर दिया गया था। कोई भी साहित्यिक मित्र उनका अंतिम दर्शन नहीं कर सका। इस डायरी में ऐसे अनेक मार्मिक प्रसंग शामिल हैं। दरअसल, यह डायरी कोरोना काल का विश्वसनीय ऐतिहासिक दस्तावेज़ है। इस डायरी के कुछ प्रसंग और कुछ ब्योरे बोझिल लग सकते हैं क्योंकि इनसे हम अतिपरिचित हैं, लेकिन कुछ सालों के बाद जब हम कोरोना त्रासदी को भुला रहे होंगे, तब यह किताब हमें याद दिलायेगी कि हम सब ज़िंदगी और मौत के बीच फंसे हुए थे।

मो. 9868628602

पुस्तक : *मारक लहरों के बीच-कोरोना काल की डायरी*
लेखक : राघवेंद्र रावत
प्रकाशक : मोनिका, 85 /175 , प्रताप नगर, सांगानेर, जयपुर -302033

नये मगध का 'जनतंत्र'

जीवन सिंह

नये मगध में, कवि, संपादक राकेशरेणु का तीसरा काव्यसंग्रह है। वे पिछले तीन दशकों से काव्य रचना ही नहीं, साहित्य की कई विधाओं में एक साथ बहुमुखी काम करते रहे हैं। इस तीसरे संग्रह की कविताओं से गुज़रते हुए उनके स्वभाव से संबंधित पहली बात जो सबसे ज़्यादा असर डालती है, वह है उनका अपने समय और जीवन के यथार्थ के प्रति गहरा मूल्यबोध, जिसमें आधुनिक, प्रगतिशील विवेक के साथ साथ जनवादी मूल्यों की सृजनात्मक आस्था देखकर सुखानुभूति हुए बिना नहीं रहती। ऐसा बहुत कम होता है जब किसी कवि की हर कविता की हरेक पंक्ति किसी जीवन मूल्य से प्रेरित होती है। उनकी शायद ही कोई कविता होगी जिसमें किसी जीवनमूल्य की शिनाख़्त न हो या उस मूल्य तक पहुंचने के लिए नहीं लिखी गयी हो। राकेशरेणु बिहार के मिथिलांचल से आते हैं लेकिन अपनी ज़मीन के साथ उसके ऊपर एक ऐसे आकाश को रचते हैं जो जनतांत्रिक मूल्यों की पक्षधरता में पूरे विश्व को एक साथ ले आता है। उनका नया मगध ऐसा ही है जिसमें इतिहास न होते हुए भी उसका एक रूपक है और जहां इस संग्रह की शुरुआती 15 कविताओं में ख़ासतौर से मगध आता है, जिसे वे नया मगध कहते हैं, यद्यपि इसकी व्यंजना उस नये मगध की है जो आज के भारतीय लोकतंत्र का नया मगध है, जिसको केंद्र में रखकर इस संग्रह की कविताओं का नाम रखा गया है। वैसे मगध का सबसे पहले उल्लेख *अथर्ववेद* में मिलता है। लेकिन यहां पर जो नया मगध है, वह मगध साम्राज्य नहीं है जिसका संबंध मौर्यकाल से रहा है, जिसके पीछे अशोक जैसे शासक की बदली हुई मूल्यचेतना है, चंद्रगुप्त मौर्य की शौर्य गाथाएं हैं और चाणक्य की नीतियां हैं। इन पंद्रह कविताओं में जो मगध आता है उसका संबंध उस गौण गुप्त शासक घटोत्कच से है जो अपने साथ नफ़रत की धारदार बर्छियां लेकर आया था, जिसे चौथी सदी के प्रारंभ में एक नये शासक वंश 'गुप्त' वंश का संस्थापक माना जाता है। यद्यपि कुछ इतिहासकार उनके पिता श्रीगुप्त को गुप्त वंश के शासन का संस्थापक मानते हैं। गुप्त वंश के इस गौण शासक से संबंधित इस समय के जो शिलालेख प्राप्त हुए हैं, उनमें इस वंश का वास्तविक संस्थापक शासक घटोत्कच को ही माना गया है। ज्ञातव्य है कि इसी गौण शासक ने उन सारी परंपराओं को उलटपलट दिया जो अशोक जैसे महान शासक ने मगध में बनायी थीं और जैसे स्वाधीनता मिलने के बाद आज के भारत में लोकतंत्र की नींव रखी गयी थी :

अचानक एक गौण किरदार प्रमुख हुआ
गुप्त वंश का
नफ़रत की धारदार बरछी और मुखौटे लिये
उसने राजप्रासाद में प्रवेश किया

यद्यपि इसी वंश में इस गौण शासक के बाद आगे चलकर चंद्रगुप्त प्रथम, समुद्रगुप्त और चंद्रगुप्त विक्रमादित्य तथा स्कंदगुप्त जैसे प्रसिद्ध प्रतापी शासक हुए। हम जानते हैं कि मगध उस समय भी गुप्त साम्राज्य का एक सत्ता केंद्र रहा था यद्यपि उस काल में प्रयाग और साकेत दो ऐसे सत्ता केंद्र भी थे जो बाद में मगध से अधिक प्रभावशाली बन गये थे। गुप्त शासक अपने सत्ता केंद्रों को पूर्व के बजाय पश्चिम में ले आये थे। बहरहाल यह इन कविताओं में आये घटोत्कच का ऐतिहासिक संदर्भ है। यद्यपि यहां कोई इतिहास न होकर वह वर्तमान और उसका राजनीतिक यथार्थ ही है जिसे हम मौजूदा समय में भोग रहे हैं, जिसमें नफ़रत की बर्छियां चल रही हैं और सत्ता के न जाने कितने ही मुखौटे हैं। एक तरह से यह मौजूदा समय का हमारा ही यथार्थ है जिसे कवि ने श्रीकांत वर्मा के 'मगध' की तरह किसी वक्र भाषा में न उकेर कर अभिधा की सहज भाषा में ही उकेरा है। मसलन,

जनता सांस रोके खड़ी थी
अध्यापक-विद्यार्थी-अभिभावक सब सावधान थे
सबको घटोत्कच का इंतज़ार था
नियत घोषणाओं का इंतज़ार था

घटोत्कच, दरअसल देश को 'विश्वगुरु' बनाना चाहता था लेकिन वह नहीं मानता था कि वह पुराने नियमों से बनाया जा सकता है, उसके लिए वह कुछ नये नियम लेकर आया था जिनको वह अपने अध्यापकों को बतलाकर उनके माध्यम से देश के विद्यार्थियों तक पंहुचाना चाहता था। ये नये नियम ख़ासकर विज्ञान, गणित और इतिहास के साथ साथ जीवन के हर क्षेत्र से संबंधित थे। कवि ने यहां पर फिर लिखा है,

इस तरह मगध
विश्वगुरु बनने के पथ पर
तेज़ी से अग्रसर हुआ
नित नया होता हुआ।

इसके बाद इस कविता के सबसे अंत में जो पंक्ति आती है वह महत्वपूर्ण और उल्लेखनीय है जो इस कविता की केंद्रीय पंक्ति भी है और कविता का पूरा अर्थ बदलकर उसे अपने समय से जोड़ देती है। वह पंक्ति है :

काल के उस प्रहर में
मध्य रात्रि का गहन तम था

सच तो यह है कि राकेशरेणु की इन कविताओं में लोकतांत्रिक जीवन मूल्यों के प्रति जैसी गहरी और ईमानदार आस्था व्यक्त हुई है वह आज दुर्लभ होती जा रही है। जैसा कि शीर्षक से ही स्पष्ट है कि वे एक नये मगध की बात करते हैं और इस तरह से वे कालों के अंतराल को ख़त्म करते हुए इतिहास के

एक महारूपक में वर्तमान को परिभाषित करते हैं। वैसे भी कवि उस बिहार से ही आता है जहां एक ज़माने में मगध, सत्ता का एक ऐसा केंद्र रहा है जहां से दो तरह की घोर अनाचारी और सदाचारी सत्ताओं के सबूत मिलते हैं जिन्होंने एक तरफ़ अनाचारी सत्ता के रूप में जनता को तबाह किया है और अन्यायपूर्ण, अतार्किक शासन किया है जिसका परिमाण बहुत अधिक रहा है। हम जानते हैं कि मगध एक ऐसे बड़े और भारत के सबसे प्राचीन साम्राज्य का नाम है जिसकी ख्याति और कुख्याति दोनों की ही धमक दूर दूर तक सुनी गयी है। लेकिन यह सुखद है कि राकेशरेणु ऐसे मनुष्य विरोधी शासन का प्रतिरोध अपनी कविताओं में रचते हैं और इस बहाने अपने वर्तमान का भी। व्यंग्य की हल्की सी धार उनके प्रतिरोध की वाहक बनकर कविता में अर्थविपर्यय करती चलती है। मगध यहां प्रतीक है एक ऐसी सत्ता का, जो ईसा की ढाई-तीन शताब्दी पूर्व एक समय अशोक जैसे राजतंत्री शासक के रूप में शांति और अहिंसा जैसे जीवनमूल्यों के लिए जानी जाती है, जहां से दुनिया भर को बौद्ध दर्शन का पहला मानवतावादी न्यायसम्मत संदेश हासिल हुआ था और इसके बाद यहीं से गुप्त वंश का अपेक्षाकृत लोकप्रिय शासन भी संचालित हुआ था। यही मगध ऐसे कई दौरों से भी गुज़रा है जब आमजन के लिए जीना भी यहां दुस्सह हो गया है और नंद वंश का नंद जैसा एक निरंकुश स्वेच्छाचारी कष्टप्रद शासन इसका एक उदाहरण है। जैसाकि सर्वविदित है कि इन कविताओं से पहले 'मगध' शीर्षक से प्रसिद्ध कवि श्रीकांत वर्मा का एक बेहद चर्चित कवितासंग्रह आया था जिसमें उन्होंने तत्कालीन सत्ता-केंद्र के नज़दीक रहते हुए उसके आतंरिक कुचक्रों और छलनाओं को देखकर अपने उन अनुभवों को कविता के ऐतिहासिक रूपाकार में प्रस्तुत किया था, जिसमें उन्होंने सत्ता के चरित्र का इन शब्दों में उद्घाटन करते हुए लिखा था, 'दुराचरण करें / सदाचार की चर्चा / चलाये रखें।' कहना न होगा कि *मगध* पूरी तरह से वर्मा जी की एक राजनीतिक काव्यकृति थी, जैसे राकेशरेणु की *नये मगध में*। वर्मा जी की कृति का संबंध मौर्यकालीन मगध से था जबकि राकेशरेणु का गुप्तकालीन मगध से।

आज यद्यपि हम एक लोकतांत्रिक समय में रह रहे हैं किंतु उस लोकतंत्र पर राजतंत्रों की एक निरंकुश काली छाया पड़ी हुई नज़र आती है, ऐसा प्रतीत होता है जैसे आज भी हम किसी मध्यकाल में ही रह रहे हैं। हमारे आज के लोकतांत्रिक शासक भी लोकतंत्र को अतीतोन्मुखी बनाकर उसके लोकतांत्रिक स्वरूप को पलट देना चाहते हैं। उसे जैसा लोकतांत्रिक होना चाहिए वैसा वह अक्सर नहीं हो पाता। उसके ऊपर आमजन को एक निरंकुश स्वेच्छाचारी सत्ता का साया अक्सर मंडराता नज़र आता है और वह किसी भी समय के फ़ासीवादी शासन से कम नहीं होता। कहने और दिखाने के लिए तो लोकतंत्र की विधायिका, न्यायपालिका, कार्यपालिका जैसी अनेक संस्थाएं भी यहां काम कर रही होती हैं लेकिन वास्तविकता में सत्ता के भय और प्रलोभन के सामने वे लोकतांत्रिक मूल्यों के निर्माण में निस्सहाय ही नहीं, बहुत कमज़ोर साबित हुई हैं। वर्तमान में इसका गहरा अहसास नागरिकों को हुआ है जिससे अपने समय के प्रति ईमानदार एक सच्चा कवि कैसे अछूता रह सकता है? यह आकस्मिक नहीं है कि इन शुरुआती पंद्रह कविताओं में एक कविता में बीसवीं सदी का कुख्यात फ़ासीवादी शासक मुसोलिनी भी आता है। यह इस शृंखला की नौवीं कविता है जिसमें कवि ने कहा है :

टाइम मशीन उलट गयी थी
मुसोलिनी मगध में था

जहां ढेरों लोग थे और थोड़े बाग़।

लेकिन यह उसे पसंद नहीं था। मुसोलिनी चाहता था कि देश में किसी तरह की कोई विविधता न रहे, सब कुछ एक जैसा, एक रस और एक रूप हो। उसे विविधता से नफ़रत थी। आदमी ही नहीं, बाग़ और उनमें खिलने वाले तरह तरह के रंगबिरंगे फूल भी उसे नापसंद थे। सब जानते हैं कि इस समय देश में एक विचारधारा इसी मुसोलिनी से मिलती है। कौन नहीं जानता कि लोकतंत्र के लिए ऐसी विचारधारा कितना ख़तरनाक होती है। लोकतंत्र विविधता के बगीचे में ही फलता फूलता है। और ज़िंदगी में व्याप्त यह विविधता ही लोकतंत्र को बचाती है जैसे कविता में कवि बतलाता है :

जब नाउम्मीदी पसरी थी चतुर्दिक
हां, ठीक उसी समय, सड़क के बीचोंबीच
कंक्रीट की सख़्त परत फोड़
फूटने लगे थे कल्ले उम्मीद के

यह संयोगमात्र नहीं है कि इसकी एक कविता मुसोलिनी के मित्र जर्मनी के तानाशाह फ्यूहरर से भी संबंधित है। यह इस संग्रह की ग्यारहवीं कविता है जिसमें कवि ने फ्यूहरर यानी हिटलर को ख़ासतौर से आर्य कहकर संबोधित किया है क्योंकि वह स्वयं को आर्य रक्त का सर्वश्रेष्ठ इंसान मानते हुए अन्य समुदायों से घृणा करता था, ख़ासतौर पर जर्मनवासी यहूदियों से। यहां भी कवि यह कहते हुए अपना प्रतिरोध प्रस्तुत करता है कि जो शक्ति हिटलर जैसे आज के तानाशाह के पास है वह उसकी अपनी नहीं, जनता की शक्ति है, यही शक्ति एक दिन उसके पतन और विनाश का कारण बनेगी। कहना न होगा कि इस शृंखला में सभी कविताएं एक जैसी नहीं हैं। इनमें कुछ कविताएं एक तरह से जीवनधर्मी भी हैं जो ज़िंदगी के सक्रिय और मूल्यवान अनुभवों से निर्मित हैं, जैसे सातवीं कविता में यह स्थापित करना कि 'हमें हर बार चुनैतियों और विपदाओं ने गढ़ा'। और बारहवीं कविता में वह लड़कियों के स्कूल जाने की बात करता है।

इस संग्रह में कई तरह की महत्वपूर्ण सकारात्मक जीवनधर्मी शृंखलाबद्ध कविताएं संकलित हैं जो जीवन की विविध अनुभूतियों से पाठक का एक रिश्ता स्थापित करती हैं। उसे प्रेरित, उत्साहित और उमंगित करती हुई उन जीवन मूल्यों से जोड़ती हैं जो प्रेम जैसी भावना के लिए कवि ज़रूरी मानता है। सच तो यह है कि इन कविताओं का सबसे बड़ा जीवन मूल्य वह प्रेम ही है जो लोकतांत्रिक मूल्यों से होकर आने पर ही सच्चे प्रेम की अनुभूति कराता है। यह आकस्मिक नहीं है कि इसमें प्रेम शृंखला की पांच कविताएं अलग से हैं। इनमें तीन कविताएं किसान शृंखला से संबंधित भी हैं जो 2020-21 में दिल्ली की सीमाओं पर चले किसान आंदोलन की याद दिलाती हैं। इसी तरह से पांच कविताएं बाबूजी यानी पिता के लिए हैं और इसी तरह से मां से संबंधित कविताएं भी यहां हैं यद्यपि वे उस तरह से शृंखलाबद्ध नहीं हैं। पांच कविताएं तुम्हारा होना यानी प्रिया पत्नी से संबंधित हैं जो आमतौर पर प्रेम-जैसे स्रोत की प्रवाहिनी होती है और जिसके बिना पुरुष का जीवन अपूर्ण होता है। यहां अलग से भी स्त्री संदर्भ की दो महत्वपूर्ण कविताएं संकलित हैं और घर को लेकर भी दो कविताएं हैं। इस संग्रह की

सबसे उल्लेखनीय पांच कविताएं प्रेम से संबंधित और पांच कविताएं अलग अलग रंगों से संबंधित हैं। प्रेम कवि का एक ऐसा सरोकार है जो उसके मन को सृजनकारी बनाये रखने में सबसे अधिक मदद करता है। उसने एक कविता में कहा भी है कि सौंदर्य और कलाओं के सारे उत्स प्रेम में मौजूद हैं :

संगीत का परम उदात्त भाव है उसमें
कला की पराकाष्ठा वह
हर सौंदर्य का उत्स है
नृत्य की कलाएं उससे
सर्जना के मूल में है प्रेम
उत्कर्ष का पर्याय
निरंतर क्रूर होती दुनिया में
बस बचा रहे थोड़ा प्रेम।

मो. 9785010072

पुस्तक : *नये मगध में* (कविता संग्रह : 2022)
लेखक : राकेशरेणु
प्रकाशक : अनुज्ञा बुक्स, 1/10206, लेन नं.1E, वेस्ट गोरख पार्क, शाहदरा, दिल्ली-110032

दहन होते देश की कथा :
हरियश राय का उपन्यास, *दहन*

प्रेम तिवारी

हरियश राय हिंदी के एक महत्वपूर्ण कथाकार हैं। वाणी प्रकाशन से उनका नया उपन्यास, *दहन* इसी वर्ष छपकर आया है। इस उपन्यास में आज के भारत की ऐसी कहानी है जिसे पढ़कर मन सिहर उठता है। आज़ादी के बाद देश को धार्मिक रूढ़िवाद, संप्रदायवाद और अंधविश्वास से मुक्त करके वैज्ञानिक चेतना से युक्त, प्रगतिशील, धर्मनिरपेक्ष और वास्तविक अर्थों में जनवादी बनाने का जो अथक प्रयत्न वर्षों किया गया, वह उपन्यास के कथानक में दम तोड़ता हुआ दिखायी देता है। उपन्यास के कथानक की एक धुरी शिक्षा-व्यवस्था है जिसे हरियश राय ने धीरे-धीरे सांप्रदायिकता, रूढ़िग्रस्तता और अंधविश्वास की ज्वाला में दहन होते हुए चित्रित किया है।

उपन्यास का एक प्रमुख चरित्र विक्रम सेठ शिक्षा निदेशालय का निदेशक है, हालांकि ज़मीनों की ख़रीद-फ़रोख्त की दलाली भी उसका पार्ट टाइम पेशा था। विक्रम सेठ की दिलचस्पी शिक्षा में कम, स्कूलों के सांप्रदायीकरण में अधिक थी। यह बात स्कूल की शिक्षिका सौम्या और गणित के शिक्षक विजय माही जानते थे। विक्रम सेठ जो भी निर्देश भेजता है उसे सौम्या और विजय माही के अलावा स्कूल की प्रिंसिपाल और दूसरे शिक्षक बिना किसी विरोध के चुपचाप स्वीकार कर लेते हैं। लेकिन सौम्या और माही चुप नहीं बैठते हैं। वे हर बार अपना विरोध दर्ज करते हैं। हालांकि उनकी आवाज़ दबा दी जाती है। और अंत में हम देखते हैं कि स्कूल परिसर में एक विशाल हवन कुंड बनकर तैयार है, जिसमें हवन सामग्री डाली जा रही है और आग की ऊंची-ऊंची लपटें उठ रही हैं। हवन में शिक्षक-विद्यार्थी सब शामिल हैं। स्कूल के इस वातावरण को देखकर मन भय से भर उठता है। स्कूल से लेकर सौम्या-नीलिमा के घर और पूरे समाज तक में धार्मिकता का प्रदर्शन और अंधविश्वास जिस ढंग से फैलता हुआ दिखायी देता है, उससे लगता है कि लोग उन्माद ग्रस्त हो गये हैं। सौम्या के पति भास्कर त्रिवेदी, उसके ससुर बलराज त्रिवेदी और सास सभी इस उन्माद में शामिल हैं। देश में सांप्रदायिकता की बैसाखी पर आज जो नयी राजनीति खड़ी हो रही है, यह उसी का क्लोज़अप है। यह उन्माद सचमुच डराता और बेचैन करता है इसलिए कि इसमें परदुखकातरता का भाव, भक्ति और करुणा नहीं, बल्कि दूसरे को डराने, सांप्रदायिक प्रदर्शन और अहंकार का भाव है।

कथानक की दूसरी धुरी स्त्री के रूप में सौम्या का जीवन है। सौम्या प्रगतिशील विचार रखने वाली ऐसी स्त्री है जो विद्यार्थी जीवन में भास्कर के तर्कपूर्ण वैज्ञानिक विचारों से प्रभावित होकर उससे प्रेम-विवाह करती है। लेकिन जब उसे पता चलता है कि भास्कर का वास्तविक चरित्र कुछ और ही है तो उसे बहुत चोट पहुंचती है। भास्कर और उसका पूरा परिवार जिस ढंग से रूढ़िग्रस्त है, उसे देखकर सौम्या बहुत बेचैन होती है, लेकिन विवश है। कुछ कर नहीं पाती। उसके संघर्ष का एक मोर्चा यह

परिवार है। दूसरा मोर्चा स्कूल है जहां वह निदेशक विक्रम सेठ और दूसरे सहकर्मियों के आंखों की किरकिरी है। इसलिए कि वह धार्मिक रूढ़ियों, अंधविश्वासों और शिक्षा के सांप्रदायीकरण का विरोध करती है और प्रगतिशील और तर्कपूर्ण वैज्ञानिक मूल्यों को शिक्षा के लिए ज़रूरी समझती है। वह किसी का मुंह नहीं जोहती और अपने ताक़त भर लड़ती है। लेकिन हार नहीं मानती है। तीसरा मोर्चा दो-दो परिवार हैं। जहां एक में उसके बीमार मां-पिता हैं। दूसरे में उसके पति भास्कर, ससुर-सास और बच्चे हैं, जिनकी देखभाल करना उसकी ज़िम्मेदारी है। और यह बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी है। सौम्या पर पड़ने वाले ये चौतरफ़ा आघात उसे भीषण बीमारी की ओर धकेल देते हैं। वह कैंसर जैसी लाइलाज बीमारी के चंगुल में फंस जाती है और अंत में दम तोड़ देती है।

हरियश राय का यह उपन्यास आज के राजनीतिक माहौल में जो धार्मिक उन्माद फैला हुआ है, उसी की कथात्मक अभिव्यक्ति है। हालांकि लेखक ने सौम्या के चरित्र के बहाने स्त्री के मन को, उसके जीवन की लाचारी और दुश्वारी के अनुभवों को बहुत वास्तविक ढंग से चित्रित करने का प्रयत्न किया है। उपन्यास का हर वह चरित्र जो चापलूस, धनलोलुप, भीरु, लालची, अंधविश्वासी, रूढ़िवादी और दिखावटी है वह धार्मिक और आस्थावान है। केवल विजय माही और सौम्या दो ही ऐसे चरित्र हैं जिनका नज़रिया प्रगतिशील, तार्किक और वैज्ञानिक है, जो हर तरह के धार्मिक अंधविश्वास और दक़ियानूसी रवैये का विरोध करते हैं, हालांकि उन्हें महत्व नहीं दिया जाता और उनकी बातों को दबा दिया जाता है। समाज में भी हम अपनी आंखों के सामने यही सब होता देख रहे हैं। जो तार्किक हैं, बुद्धिजीवी हैं, प्रगतिशील सोच रखने वाले हैं, जनता के वास्तविक मसलों को लेकर संघर्ष करने वाले सामाजिक कार्यकर्ता हैं, उनके विरुद्ध अभियान चलाया जा रहा है। उनकी गिरफ़्तारियां हो रही है। उनका मुंह बंद करने की कोशिश हो रही है। जनतंत्र हाशिये की चीज़ हो गया है। इस उपन्यास में इसकी एक विरल तस्वीर देखने को मिलती है। उपन्यास के अंतिम चौंतीस पृष्ठों में सौम्या की बीमारी और उसकी मृत्यु पाठक को झकझोर देती है।

उपन्यास के अंतिम दो पृष्ठों में लेखक ने हर चरित्र के बारे में छोटी छोटी टिप्पणी करते हुए यह बताया है कि कथा के अंत में उपन्यास में आये चरित्रों की स्थिति क्या है? कौन-सा चरित्र कहां क्या कर रहा है? कैसे जी रहा है? इससे पाठक को तसल्ली मिलती है।

मो. 9911364615

उपन्यास : *दहन*
लेखक : हरियश राय
प्रकाशक : वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 2022